विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका

ISSN: 2582-6530

5-6

जनवरी-दिसंबर 2022

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम

Photo by Reyhan

संपादक: प्रदीप त्रिपाठी

ISSN: 2582-6530

कंचनजंघा : विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम

वर्ष: 03, अंक: 05-06, जनवरी-दिसंबर, 2022 (संयुक्त अंक)

संपादक

प्रदीप त्रिपाठी

पत्राचार का पता

ओम साईं कुंज, मंदिर रोड

नीयर रंगीत गर्ल्स हॉस्टल, 06 माइल, गंगटोक

सिक्किम, पिन कोड : 737102

संपर्क : +91 - 6294913900 ईमेल : kanchanjanghapatrika@gmail.com

आवरण : कुमार गौरव

वेबसाइट : www.kanchanjangha.in

संपादन समिति

परामर्श मंडल

येसे दरजे थोंगछी

देवराज

सुवास दीपक

तेजेन्द्र शर्मा

राजेश जोशी

अनामिका

श्रीप्रकाश मिश्र

किरन हजारिका

भीम ठठाल

ओम जी उपाध्याय

आशीष कंधवे

वीरेन्द्र परमार

समीक्षा समिति

फिल्मेका मारबानियांग

शोभा लिम्बू

अनुशब्द

दीपक कुमार

जेनी मलसोमदोङकिमी

राजीव रंजन प्रसाद

कविता कर्मकार

अरविंद कुमार यादव

संपादक

प्रदीप त्रिपाठी

संपादक मण्डल

भरत प्रसाद

जय कौशल

संजय कुमार

अखिलेश शंखधर

मिलनरानी जमातिया

दीपक पांडेय

ब्रज रतन जोशी

रूपेश कुमार सिंह

चुकी भूटिया

गोविंद प्रसाद वर्मा

जमुना बीनी तादर

अनुज कुमार

कुँवर रवींद्र

देवचंद्र सुब्बा

राहुल

पंकज कुमार सिंह

कुमार गौरव मिश्र

कुमार मंगलम

अखिल मिश्र

आशीष कुमार

 ISSN: 2582-6530

कंचनजंघा

वर्ष: 03, अंक: 05-06, जनवरी- दिसंबर, 2022 (संयुक्त अंक)

इस अंक में...

संपादकीय

तुम्हारा अंतिम गीत (स्मृति: तेमसुला आओ)

लोक कथाएँ

आदमी और शैतान (सुमी आदिवासी- नागालैंड) — लूसी सवु एवं आशीष कुमार

का नॉहकालिकाइ (मेघालय की लोककथा) — एह्सिंग खिएव्ताम्

हिंदी के सजग प्रहरी

'अरुण नागरी' के उत्तर-पूर्वी संबोधक रमण शाण्डिल्य — राजीव रंजन प्रसाद

लेख

अरुणाचल प्रदेश के साहित्यिक विकास में महिलाओं की भूमिका — आरती शर्मा

पूर्वोत्तर भारत की औपन्यासिक अभिव्यक्ति — अरविंद कुमार यादव

अरुणाचल प्रदेश का आदिवासी समाज और स्त्री-जीवन — अभिषेक कुमार यादव एवं चेबी मिहु

असमीया विवाह गीतों में राम का प्रसंग — करबी भूयाँ

कविताएं

प्रवीण खालिंग की दो कविताएं

जमुना बीनी की तीन कविताएं

दीपा राई की चार कविताएं

जोराम यालाम नाबाम की चार कविताएं

सविता दास सवि की पाँच कविताएं

अनूदित रचनाएँ

कविता (असमीया से हिंदी)

समीर तांती की चार कविताएं अनुवादक: दिनकर कुमार

कहानी (नेपाली से हिंदी)

मनमाया लिम्बूनी: विक्रमी संवत्

मूल रचना: भीम दाहाल अनुवादक: सुवास दीपक

लेख (अंग्रेजी से हिंदी)

त्रिलोचन पोखरेल: भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सिक्किम की सीमांत कथा

मूल लेख: बिनोद भट्टराई एवं राजेन उपाध्याय अनुवादक: मणि मोहन

लेख (मिजो से हिंदी)

ईसाई धर्म पूर्व मिजो के धार्मिक विचार

मूल लेख: जे वी ल्हुना अनुवादक : डॉ जेनी मलसोमदोङकिमी

पूर्वोत्तर भारत का पौराणिक क्षितिज

वन्य जीवन की मिजो रामकथा डॉ. मुनीन्द्र मिश्र

कहानी

बेटी: ताश के पत्ते मोर्जुम लोयी

पुस्तक समीक्षा

स्कूली शिक्षा व्यवस्था बनाम अरण्य रोदन डॉ. वीना सुमन

 ISSN: 2582-6530

संपादकीय

तुम्हारा अंतिम गीत

(स्मृति: तेमसुला आओ)

मैं गा चुकी होऊंगी
अपना अंतिम गीत
जब मैं नहीं होऊंगी
विचलित
एक अशक्त शरीर
और टूटी हुई आत्मा से।

गा चुकी होऊंगी
अपना अंतिम गीत
यदि बच्चों की खिलखिलाहट
और स्त्रियों की गप्पें
प्रतिक्रिया नहीं पैदा करेंगी मुझमें।

- **तेमसुला आओ** (हिंदी अनुवाद: श्रुति एवं माधवेंद्र)

यह पंक्तियाँ तेमसुला आओ के रचनात्मक विवेक को समझने के लिए पर्याप्त हैं। तेमसुला हमारे समय की ऐसी महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिनकी रचनाओ में पूर्वोत्तर भारत का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य सूक्ष्मतर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। समग्रता में देखें तो तेमसुला ने अपने साहित्य के माध्यम से नागा संस्कृति को संरक्षित करने के साथ-साथ उसे विस्तार देने का कार्य किया है। उनकी रचनाओं का सरोकार अंतिम जन से है। सांस्कृतिक अभिव्यक्ति तेमसुला की रचनाशीलता का मूल स्वर है। बीते अक्टूबर माह में तेमसुला आओ ने इस दुनिया को अलविदा कह दिया। यह न सिर्फ पूर्वोत्तर भारत बल्कि पूरे साहित्यिक जगत के लिए अपूरणीय क्षति है। अंग्रेजी भाषा की एक चर्चित कवयित्री, कथाकार और एथनोग्राफर के रूप में तेमसुला आओ की विशिष्ट पहचान है। उत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के अंग्रेजी विभाग में बतौर प्रोफेसर उन्होंने लंबी अवधि तक कार्य किया। वर्ष 2013 में कहानी संग्रह लेबर्नम फॉर माइ हेड (अंग्रेजी) के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया। नागालैंड के परिदृश्य में देखें तेमसुला आओ का योगदान अविस्मरणीय है। उनके सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अवदान को दृष्टिगत रखते हुए यह कहना तर्कसंगत है कि तेमसुला आओ अपने आपमें एक संस्था सरीखे थी। उनके विशिष्ट योगदान को ध्यान में रखते हुए नागालैंड सरकार ने उन्हें राज्य महिला आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया था।

तेमसुला आओ की साहित्यिक दुनिया का फ़लक अत्यंत व्यापक है। उनके अब तक पाँच कविता संग्रह, दो कहानी संकलन एवं एक उपन्यास प्रकाशित हैं। इसके अलावा उन्होंने कई वाचिक साहित्यिक ग्रन्थों को संकलित एवं संपादित करने का कार्य भी किया है। हाशिये के समाज की मूल चिंता तेमसुला आओ की साहित्यिक जमीन का केंद्रीय आधार रहा है। वह अपनी एक पुस्तक की भूमिका में लिखती हैं- "अपनी कहानियों में मैं लोगों के जीवन की ओर फिर से पलट कर देखने की कोशिश करती हूँ, जिनके दुख दर्द अब तक सार्वजनिक होने से बलपूर्वक दबाए, छुपाए और अस्वीकार किए जाते रहे।... मनुष्य के मन के किसी कोने में यह निष्ठुरता छुपी बैठी है, जो अन्याय और मनुष्य विरोधी अत्याचार तब तक देखती और बर्दाश्त करती रहती है, जब तक इसके पंजे सीधे उस तक नहीं पहुँचते।" (आओ, तेमसुला, 2022) तेमसुला आओ का यह मंतव्य उनके वैचारिक दृष्टिकोण और सामाजिकता का जीवंत प्रमाण है। उनकी रचनाओं में सामाजिक परिवर्तन की छटपटाहट है। मिसाल के तौर पर उनकी कविता की यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य है- "अगर ज़ख़्म बोल सकता/ तो किस भाषा का करता प्रयोग/ किस न्याय की करता तलाश/ किसे देता दोष/ अत्याचारी को/ उसकी ताकत के लिए/ या पीड़ित को उसकी कमजोरी के लिए" (मूल रचना- तेमसुला आओ, अनुवाद: श्रुति एवं माधवेंन्द्र, 2012) तेमसुला आओ हमारे समय की ऐसी चेतस रचनाकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में हमेशा जन-सरोकारों को बचाए रखा। उनकी रचनाशीलता से गुजरते हुए महसूस होता है कि प्रकृति चेतना और उनकी समृद्ध लोक परंपरा ने उनके साहित्य को और अधिक उर्वर बनाने का कार्य किया है। विकास के नाम पर हो रहे दमन और शोषण के प्रति तेमसुला आओ की चिंता उनकी कविता 'बोन्साई' में प्रमुखता से दर्ज है- "उपवन/ सीमित कर दिए गए/ सिर्फ अविकसित फलों को उपजाने के लिए। / पृथ्वी का विस्तार / सिमट गया है और प्रदर्शित है/ नन्हें गमलों की सीमा में।" मूल रचना- तेमसुला आओ, अनुवाद: श्रुति एवं माधवेंन्द्र, 2012)

तेमसुला की महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों का जर्मन, फ्रेंच, असमीया, बांग्ला और हिंदी भाषा में अनुवाद हो चुका है। समग्रता में देखें तो तेमसुला आओ पूर्वोत्तर भारत की ऐसी आवाज थी, जिन्होंने उत्तर पूर्व के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिदृश्य को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने का कार्य किया है। तेमसुला द्वारा 'आओ' समुदाय की समृद्ध लोक विरासत को संरक्षित करने का अनूठा प्रयास उल्लेखनीय और अविस्मरणीय है। कंचनजंघा पत्रिका समूह द्वारा हाल ही में पद्मश्री तेमसुला आओ स्मृति व्याख्यानमाला आरंभ की गई है। इस सीरीज के द्वारा हम उनकी रचनाशीलता एवं समग्र अवदान को वैश्विक पटल पर रेखांकित करने का प्रयास करेंगे, यही उनके प्रति हमारी श्रद्धांजलि होगी।

पूर्व की भांति कंचनजंघा का यह अंक समग्रतः पूर्वोत्तर भारत की रचनाशीलता पर केंद्रित है। इस अंक में हमने एक नए कॉलम 'हिंदी के सजग प्रहरी' को आरंभ किया है। इसके तहत हिंदीतर प्रांतों विशेष रूप से उत्तर पूर्व में हिंदी भाषा एवं साहित्य के विकास में योगदान देने वाले महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों की भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास किया जाएगा। इसकी शुरुआत हम डॉ. रमण शांडिल्य जी से कर रहे हैं। विदित हो कि विगत माह डॉ. शांडिल्य हमारे बीच नहीं रहे। इस सीरीज की शुरुआत रमण जी से करने का बड़ा कारण

यह है कि डॉ. शांडिल्य कंचनजंघा पत्रिका के परामर्श मंडल के वरिष्ठ सदस्य थे। इस पत्रिका के उन्नयन के प्रति उनका विशेष अनुराग था। निस्संदेह अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषा एवं साहित्य के विकास में डॉ. शांडिल्य की भूमिका अविस्मरणीय है। उनकी रचनात्मक संवेदना को व्यापक फ़लक पर समझने के लिए इस अंक में शामिल डॉ. राजीव रंजन प्रसाद का लेख उल्लेखनीय है।

हिंदीतर प्रांतों में आज भी सृजनात्मक स्तर पर हिंदी लेखकों की कमी है। पृष्ठ प्रेषण से बचते हुए पूर्वोत्तर भारत के प्रत्येक राज्यों से विविधतापूर्ण सामग्री का संकलन करना, बेहद चुनौतीपूर्ण है। उक्त संदर्भ को दृष्टिगत रखते हुए हमने अलग-अलग राज्यों से विशिष्ट रचनाकारों को क्रमशः स्तंभकार के रूप नियमित लेखन करने का आग्रह किया है। इस कड़ी की शुरुआत हम सिक्किम प्रांत के वरिष्ठ साहित्यकार एवं अनुवादक सुवास दीपक से कर रहे हैं। निश्चित रूप से उनकी रचनाशीलता एवं अनुभवों से कंचनजंघा पत्रिका समृद्ध होगी, ऐसा हमें विश्वास है।

हम आजादी के अमृत महोत्सव के 75 वर्षों की दहलीज़ पर खड़े हैं। हमारे लिए यह आत्मालोचन का समय है, ताकि सही मायने में हम अपने समय और समाज के वास्तविक धरातल को समझ सकें। इस अंक में हमने सिक्किम के महत्वपूर्ण स्वतंत्रता सेनानी त्रिलोचन पोखरेल पर केंद्रित दुर्लभ सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में उत्तर पूर्व की तस्वीर भले ही ओझल है, किंतु त्रिलोचन पोखरेल जैसे व्यक्तित्व से संबंधित प्राप्त तथ्यों के आधार पर आज इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करना भी तर्कपूर्ण जान पड़ता है।

पूर्वोत्तर भारत के पौराणिक संदर्भ बहुत ही ऐतिहासिक हैं, कुछ विवादास्पद भी। इस कड़ी में डॉ. मुनीन्द्र मिश्र का मिजो रामकथा पर केंद्रित मंतव्य हम पाठकों के मध्य विचार-विमर्श और बहस के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। हिंदी कविता खंड के अंतर्गत सिक्किम, असम और अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय रचनाकारों को शामिल किया गया है। मिजोरम राज्य पर केंद्रित जेनी मलसोमदोङकिमी का लेख, नागालैंड एवं मेघालय राज्य की लोककथाएँ अपने आपमें विशिष्ट हैं, इसका मूल्यांकन आप जैसे सुधी पाठक ही करेंगे। अंक के विलंब के लिए हमें खेद है। यह अंक अब आपका है, पाठकीय प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा के साथ...

(प्रदीप त्रिपाठी)

आदमी और शैतान

(सुमी आदिवासी- नागालैड)

संकलन एवं संपादन: लूसी सवु एवं आशीष कुमार

यह एक ऐसे दौर की कथा है, जब मनुष्य शैतानों के साथ रहता था। उन्होंने एक-दूसरे से सटे खेतों में खेती की, समय-समय पर प्रत्येक ने एक-दूसरे के क्षेत्र की प्रगति एवं वृद्धि पर ध्यान दिया। मनुष्य के खेत में लगी फसलों में बहुत तेजी से वृद्धि होने लगी, लेकिन खरपतवारों की अधिकता के कारण फसलें अस्वस्थ हो गई। जबकि, शैतान की फसल जो शुरुआत में ठीक नहीं थी, धीरे-धीरे हरियाली और स्वस्थ पौधों के रूप में विकसित हुई क्योंकि उसके खेत में कोई खरपतवार नहीं था। एक दिन, उस आदमी ने शैतान से पूछा "मेरा खेत जंगली पौधों से भरा है; जंगली घास इन फसलों को नुकसान पहुंचा रही हैं, दयालु बनो और इन जंगली पौधों को दूर करने में मेरी मदद करो।" शैतान मदद करने के लिए तैयार हो गया और अगले दिन सवेरे वह आदमी के खेत में आया। उसने अपनी लोहे की छड़ी निकाली और ऊपर से नीचे तक खेत के सभी खरपतवारों को निकाल दिया। फिर उसने जंगली पौधों को रस्सी से बाँध दिया और जंगली पौधों के गट्ठर पर एक बड़ा पत्थर रख दिया, उस दौरान वह आदमी आस-पास नहीं था। आदमी का खेत साफ होने के बाद, खरपतवार के बंडलों को पत्थर के नीचे ठीक से रखा गया था, उसने उस आदमी से कहा, "पत्थर को मत हटाना, जब तक कि मैं वहां पहाड़ी से आगे न निकल जाऊं।"

यह कहकर शैतान घर की ओर चल पड़ा। कुछ ही समय बाद, वह आदमी यह जानने के लिए इतना उत्सुक हो गया कि पत्थर के नीचे क्या है, इसलिए शैतान के पहाड़ी पार करने से पहले ही उसने पत्थर को धक्का देकर हटा दिया। पत्थर के हटते ही जंगली पौधों ने एक बार फिर मनुष्य के खेतों में अपनी जगह बना ली। उस आदमी को अपने उतावले व्यवहार से इतनी घृणा हुई कि अगले दिन उसने फिर से शैतान से विनती की "तुमने मुझ पर जो भरोसा किया था, वह मैंने तोड़ दिया है, मेरी सारी मूर्खता के लिए, मुझे माफ कर दो और एक बार फिर से मेरे खेत को साफ करने में मेरी मदद करो।" लेकिन शैतान ने कहा, "भगवान कई बार माफ़ कर देता है क्योंकि वह बना सकता है और फिर से कर सकता है, हम बार-बार क्षमा करके खुद को मौका नहीं दे सकते हैं, इसलिए खुद से करना सीखो, मैं फिर कभी मदद नहीं करूंगा।" इसी के साथ वह घर की ओर चला गया।

दिन बीतते गए। शैतान कुछ-कुछ दिनों में अपने खेत में आता था, लेकिन आदमी लगातार अपने खेत में आता रहा, क्योंकि खरपतवार बहुत था, इसलिए वह शैतान के तरीके जानने के लिए बहुत उत्सुक था। एक दिन, वह शैतान के खेत की तरफ बढ़ा और उससे पूछा, "आप घर जाने के लिए ऊपर या नीचे कौन सा रास्ता अपनाते हैं।" शैतान ने कहा, "मुझे घर जल्दी पहुँचने के लिए ऊपर का रास्ता ज्यादा सरल लगता है।" एक दिन वह मनुष्य ऊपरी मार्ग के पास छिप गया, और छिपकर शैतान की बाट जोहता रहा, कि वह उसके

मार्ग को पहचान ले, और उसके घर को भी ढूँढ़ ले। लेकिन शैतान निचले रास्ते से घर को चल पड़ा। यह काफी दिनों तक चलता रहा। इस प्रकार उस आदमी ने शैतान की प्रतीक्षा करने का फैसला किया, लेकिन जो शैतान ने कहा था, उसने उसके ठीक विपरीत किया, और उस दिन ऊपरी रास्ते में शैतान की प्रतीक्षा की, जिस दिन शैतान ने कहा कि वह निचले रास्ते से घर जाएगा। जैसे ही वह आदमी इंतजार कर रहा था, उसने देखा कि एक जानवर अपने चारो ओर एक लौ के साथ उल्टा जा रहा है। इससे वह आदमी इतना डर गया कि वह बेहोश हो गया।

शैतान जंगल में चला गया, 'आयिलो' (पुदीना) नामक एक पौधे को तोड़ कर अपनी हथेली से मसल दिया; उसने उस मनुष्य के नथनों के भीतर फूंक दिया और उसकी नाक के बाहर कुछ मल दिया। इससे युवक को होश आया। शैतान ने उस आदमी से कहा, "वह मैं था, मैं जानता था कि जब तुम मेरा असली रूप देखोगे तो चौंक जाओगे, इसलिए मैंने तुमसे मिलने से परहेज किया।" उसने उस आदमी से यह भी कहा कि वह अगले दिन अपने खेत के सभी खरपतवारों से छुटकारा पा लेगा और इस तरह दोनों अपने-अपने घर की ओर चल दिए। अपनी बात को ध्यान में रखते हुए शैतान ने उस आदमी के खेत के सारे जंगली पौधों से उसे छुटकारा दिला दिया। शैतान ने तब मनुष्य को कृषि से संबंधित विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों को सिखाया तथा समझाया कि कृषि के लिए अनुष्ठान के रूप में अभ्यास करने की आवश्यकता है। उसने उसे 'अकुवो' (एक औज़ार) भी दिया ताकि वह जमीन से खरपतवार को काट सके।

कुछ क्षेत्रों में सूमी जनजाति अभी भी अपने बच्चों को बहादुर, मजबूत रखने के लिए और शैतान से दूर रहने के लिए भी घर के बाहर आयिलो (पुदीना) लटकाते हैं। यहां तक कि बड़े आदमी और औरत भी देर रात घर से बाहर जाने पर इसे अपने कानों में लगाते हैं। आयिलो का उपयोग कई बीमारियों के लिए दवाओं और इलाज के रूप में भी किया जाता है। सामान्य रूप से नागा और विशेष रूप से सुमी जनजातियों में कई प्रकार के कृषि अनुष्ठान होते हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उनकी उत्पत्ति शैतान से हुई थी। खेतों में अनुष्ठान आमतौर पर बिना पके अंडों की पेशकश के साथ शुरू होती है, जिन्हें अंधेरी जगहों पर फेंक दिया जाता है और मुर्गी को मैदान में मुक्त कर दिया जाता है।

(लेखकीय परिचय: लूसी सवु नागालैंड राज्य से संबद्ध लोक साहित्य में रुचि रखने वाली विद्यार्थी हैं। आशीष कुमार नागालैंड विश्वविद्यालय में हिंदी अधिकारी पद पर कार्यरत हैं।)

 ISSN: 2582-6530

का नॉहकालिकाइ

(मेघालय की लोककथा)

संकलन: एट्सिंग खिएव्ताम्

मेघालय प्राकृतिक सौन्दर्य के पर्याय के रूप में भी जाना जाता है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यहाँ की वर्षा, यहाँ के लोग, यहाँ की संस्कृति एवं लोक साहित्य की अनुपम धाराओं से भारत का यह भूभाग सुशोभित है। मेघालय की यात्रा अथवा पर्यटन का विचार करते ही सॉहरा अथवा चेरापूंजी नामक पर्यटन स्थल का विचार सर्वप्रथम हमारे मस्तिष्क में आता है। सॉहरा जाकर यदि नॉहकालिकाइ झरने का दर्शन नहीं किया तो पर्यटन अधूरा ही रह जाता है। मेघालय ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत एवं भारत के बाहर भी इस झरने की सुंदरता की ख्याति है। यह झरना इतना लुभावना एवं रमणीय है कि सभी इसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। देखते ही पता चलता है कि इस झरने का दृश्य किसी सुंदर स्त्री के लंबे पीछे खुले छोड़े हुए बाल की तरह प्रतीत होता है। परंतु इतने सुंदर, सुरम्य झरने की खासी समाज में एक त्रासदीपूर्ण लोककथा प्रचलित है, जो कि पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों को आश्चर्यचकित एवं विचलित करती है। वीभत्स एवं करुण रस से भरी यह कथा आज भी हृदय को पिघला देती है।

खासी प्रदेश में पूर्व सेंराङ जरतॅह (Synrang Jyrteh) नामक स्थान लोहा निर्मिति के लिए प्रसिद्ध था। मावम्लुह (Mawmluh) नामक स्थान लोहे के उत्पाद को बांग्लादेश के सिलहट (Sylhet) शहर तक निर्यात करने का मुख्य द्वार माना जाता था। वहाँ एक महिला मजदूरी करके अपनी आजीविका चलाती थी। उस महिला का नाम था कालिकाइ। वह रोज सेंराङ जरतॅह से मावम्लुह तक लोहा पीठ पर उठाकर पहुंचाती थी। यही उसका जीवन था। लिकाइ एक पीड़ित, शोषित एवं वंचित महिला थी। उसका जीवन कष्टपूर्ण था। उसका पति बेटी के दो महीने होने पर ही गुज़र गया था, इसलिए अपनी बच्ची और अपने लिए लिकाइ रोज़ कष्ट सहकर लोहे का भार उठाती थी। विवाह के बाद लिकाइ अपने पति के साथ सेंराङ जरतॅह चली आई थी, जिस कारण उसका परिवार उससे दूर रहता था। लिकाइ अपना जीवन खुशहाली में व्यतीत करती थी, इसका कारण उसकी बेटी थी। उसकी बेटी ही उसका जीवन थी।

इस प्रकार खुशहाली में लिकाइ का जीवन दो साल बीत गया। परंतु जीवन केवल खुशहाली का ही नाम नहीं, अपितु कष्ट एवं दुःखों का भी नाम है। जीवन में दुःख और कष्टों का होना भी स्वाभाविक है। लिकाइ जब भी कभी मावम्लुह जाती थी तो एक पुरुष से उसकी मुलाक़ात होती रहती थी। वह पुरुष दिखने में बहुत सुंदर, अच्छे एवं संस्कारी परिवार से लगता था। उसके बोलने और हरकतों में लिकाइ के लिए प्रेम एवं आदर-सम्मान परिलक्षित होता था। लिकाइ से वह बड़े आदर से बात करता था, उसका ध्यान रखता एवं उसके साथ प्रेम से व्यवहार करता था। एक दिन उसने लिकाइ को अपने मन की बात बता दी और लिकाइ के प्रति प्रेम का प्रस्ताव रखा। लिकाइ दुविधा में पड़ गयी थी। उस आदमी का प्रेम प्रस्ताव स्वीकारने से पहले लिकाइ ने उसे अपने जीवन के बारे में विस्तार से समझाया। उस आदमी ने तुरंत ही उसके दुःखों, कष्टों के साथ अपनाना

स्वीकार कर लिया, परंतु लिकाइ अभी भी उस आदमी को स्वीकारने से मना कर रही थी। कारण उसके सामने उसके हृदय का टुकड़ा उसकी बेटी की सुरक्षा एवं प्रेम का प्रश्न था। लिकाइ अपनी एक बेटी के होने की बात भी उसे बता दी, उसके सामने चिंता व्यक्त करने लगी, परंतु उस आदमी ने उसकी बेटी को भी अपनी बेटी के रूप में स्वीकार करने का वचन दिया, साथ ही उसकी बेटी को भी उतना ही प्रेम देने का वादा भी किया, जितना वह लिकाइ से करता है।

लिकाइ सीधी-साधी गाँव की महिला थी, उसे न छल का पता था, न झूठ का। वह उस आदमी की बातों में फंस गयी थी। इसीलिए एक बार फिर परिवार एवं गाँव वालों की उपस्थिति में जीवन में एक पुरुष के साथ होने, सुरक्षा एवं सम्मान के एहसास के साथ लिकाइ ने उस आदमी से दूसरा विवाह कर लिया।

दिन बीतते गए, अपने पूर्ण परिवार को देखते हुए लिकाइ बहुत खुश थी। परंतु उसकी खुशी में बहुत जल्द ही ग्रहण लग गया। उसके पति के मन में धीरे-धीरे कुविचार उत्पन्न होने लगा था, वह उसकी बेटी से मन ही मन घृणा करने लगा था। अपने से ज्यादा किसी और की बेटी को लिकाइ के द्वारा अधिक प्रेम करने के कारण उसके मन में उसकी बेटी के प्रति ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होने लगा था। परंतु सीधी-साधी लिकाइ को अपनी बेटी के प्रति उस आदमी के मन में पलने वाला ईर्ष्या का आभास तक नहीं लगता था। लिकाइ उस आदमी पर भरोसा करने लगी थी, उसके साथ सुरक्षित महसूस करने लगी थी।

लिकाई का पति एक दिन थकान का बहाना बनाकर उसको अकेले ही मजदूरी करने का आग्रह किया। लिकाइ जो कि उसे भरोसा करने लगी थी, कुछ संशय किए बिना ही मान गयी। जाते-जाते लिकाइ उसे अपनी बच्ची का ध्यान रखने एवं शाम को भोजन तैयार करने का आग्रह कर काम पर चली गयी।

उस आदमी के मन में कई दिनों से पल रहा लिकाइ की बेटी के प्रति घृणा एवं ईर्ष्या को आज बाहर निकालने का अवसर मिल गया। लिकाइ के जाते ही उसके पति ने उसकी बेटी को नहलाया, नहलाकर उसने बच्ची की हत्या कर दी। उस बच्ची के शव को टुकड़े-टुकड़े काटकर उसका गोश्त पकाया । पेट और मन भरने तक उसने खाना खाया और घर से बाहर निकल गया। शाम को थकी-हारी जब लिकाइ वापस घर लौटी तो देखती है कि घर पर कोई नहीं है। अपनी बेटी और पति को घर में न पाकर, उसने सोचा कि बेटी को शायद उसका पति घुमाने ले गया होगा। भूख से व्याकुल होकर लिकाइ सीधा हाथ-मुँह धोकर खाना खाने बैठ गयी। खाने में गोश्त पका देखकर वह बहुत खुश हुई। वह झटपट खाना खाने लगी, गोश्त बहुत स्वादिष्ट बना था, इसीलिए उसने भी पेट भरकर खाना खा लिया। खाना खाने के बाद 'क्वाई'(Kwai) अथवा पान-सुपारी खाने के लिए क्वाई की टोकरी लेकर बैठ गयी। अचानक उसने क्वाई की टोकरी में अपनी बेटी के पैरों की उँगलियाँ देखी। देखते ही वह जान गयी कि ये कटी उँगलियाँ उसकी ही बेटी की हैं। वह चीखने-चिल्लाने लगी। छोटा सूअर का गोश्त समझकर अपनी ही बेटी का गोश्त खाया है, यह जानकर उसका कलेजा फटने लगा। वह पागलों की तरह चिल्लाने लगी, पूरे घर में अपने आपको पटकने लगी। लिकाइ की यह स्थिति अकल्पनीय, असहनीय एवं वेदनीय थी।

आस-पड़ोस के लोग लिकाइ की चीख सुनते ही उसके घर की ओर दौड़ पड़े। लिकाइ को शांत करने की पुरजोर कोशिश करने के बावजूद वे लोग असफल हुए। उनसे लिकाइ की अवस्था देखा नहीं गया। सभी गाँव वालों के लिए यह अकल्पनीय एवं हृदय विदारक घटना थी। लिकाइ को अपने गले में विचित्र अनुभव होने लगा था। वह अपने गले को खरोचने लगी, अपने शरीर और माथे को जोर-जोर से पीटने लगी। उसकी आँखों से आँसुओं की धार निर्बाध प्रवाहित हो रही थी। जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने के कारण लिकाइ का गला फटने लगा था। अपने जीवन की व्यर्थता को जानकार लिकाइ को अब जीने की कोई इच्छा नहीं रह गयी थी। वह अपने हाथ में तलवार लेकर पागल की तरह पूरे गाँव में दौड़ने लगी, अंततः वह एक खाई की चोटी पर जा पहुँची। खाई में कूदने से पहले वह अपने बालों को खोल ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी और अपनी बेटी को पुकारकर लिकाइ वहाँ से कूदकर अपनी जान दे दी।

लिकाइ ने जिस खाई से कूदकर आत्महत्या की थी, वहाँ से एक झरना बहता था। उस दिन से इस झरने को 'का क्षाइद नॉहकालिकाइ' अथवा 'नॉहकालिकाइ झरना' के नाम से जाना जाने लगा। अतः लोककथा में वर्णित घटना एवं उसकी त्रासदी भरी कहानी के माध्यम से आने वाली पीढ़ी को सचेत एवं सीख देने के उद्देश्य से लोगों ने इस झरने को कालिकाइ नाम दिया। आने वाली पीढ़ी इस लोककथा के माध्यम से यह जान सकेगी कि सौतेला बाप आखिर सौतेला बाप ही होता है।

(लेखकीय परिचय: लेखक उत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय के हिंदी विभाग में शोधरत हैं।)

‘अरुण नागरी’ के उत्तर-पूर्वी संबोधक रमण शाण्डिल्य

डॉ. राजीव रंजन प्रसाद

आजादी के बाद के दिन थे- ‘साठ के दशक’। डॉ. रमण शाण्डिल्य अरुणाचल प्रदेश में अध्यापक की नियुक्ति पाए, तो यहाँ की संपर्क भाषा असमीया थी। मातृभाषा बोलते यहाँ के आदिवासी पहाड़, नदी, घाटी एवं जंगल के बीच रह रहे थे। प्रकृति उनकी लोक-आस्था एवं लोक-विश्वास की वास्तविक सत्ता और सर्जक थी। अरुणाचलवासी बाहरी दुनिया से जुड़ने के लिए असमीया और अंग्रेजी को दूसरी और तीसरी भाषा के रूप में बरत रहे थे। उन दिनों शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत अधिक नहीं था, लेकिन शैक्षणिक वातावरण की नई धारा और धुरी बनने शुरू हो गए थे। डॉ. रमण शाण्डिल्य हिंदी भाषा के प्रस्तावक और उन्नायक के रूप में यहाँ आए। वह यहाँ के लोगों से हिंदी में संवादी ही नहीं हुए, बल्कि लिखने-पढ़ने की परंपरा में नई पीढ़ी को जोड़ते हुए भी दिखाई दिए।

हिंदी भाषा एवं नागरी लिपि की समिधा में लवलीन डॉ. रमण शाण्डिल्य का देहावसान इस साल मई महीने के 12 तारीख को हो गया। यह ख़बर विद्वत-जनों के लिए अपूरणीय क्षति थी। हिंदी सेवी डॉ. रमण शाण्डिल्य ने अपनी आँखे सदा के लिए मूँद ली थी। उन्होंने अंतिम सांस अपनी जन्मभूमि पर ली। मूलतः बिहार के रहने वाले रमण शाण्डिल्य पूर्वोत्तर के लिए सुपरिचित विद्वान रहे हैं। वह उत्तर-पूर्व की अटूट कड़ी रहे हैं। हिंदी भाषा के साधक डॉ. रमण शाण्डिल्य ने अपने तईं जो और जैसा भाषाई वातावरण सिरजा, वह मौजूदा अरुणाचल प्रदेश के लिए बड़ी उपलब्धि के रूप में दर्ज है। उनका संपादक व्यक्तित्व विराट था। वह भाषा के गहन एवं गंभीर पुरस्कर्ता रहे हैं। अरुणाचल प्रदेश से प्रकाशित ‘साङपो’ और ‘अरुण नागरी’ पत्रिका उनके ही संपादन में निकली तथा अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषा की नींव मजबूत की। वह राष्ट्रीय स्तर पर अरुणाचली भाषाओं और यहाँ के आदिवासी समुदाय के बारे में अलख जगाते रहे। अरुणाचली समाज-संस्कृति, मूल्य-दर्शन, भाषा-बोली, इतिहास व समकालीन स्थितियों के विषय में उन्होंने श्रमसाध्य ढंग से लगातार संवेदनशील होकर लिखने का महती कार्य किया। वर्ष 2019 में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्त्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन में डॉ. शाण्डिल्य को ‘वाचस्पति सम्मान’ से विभूषित किया गया, तो यह क्षण कभी न भूलने वाला था। इसी मौके पर रमण शाण्डिल्य की उपस्थिति में देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय के हिंदी विभाग ने ‘अरुणाचल प्रदेश में हिंदी: अतीत से वर्तमान तक’ विषयक व्याख्यान आयोजित हुआ जो अकादमिक अभिनन्दन की तरह लगा। अरुणाचल प्रदेश की नई पीढ़ी रमण शाण्डिल्य को कम जानती है, लेकिन पुरानी पीढ़ी का उनसे जुड़ाव अद्भुत था। अरुणाचल प्रदेश के पहले हिंदी लेखक जुमसी सिराम उन्हें अपना गुरु मानते थे। जोराम आनिया ताना, जमुना बीनी, जोराम यालाम, तुम्बम रीबा की रचनाशील पीढ़ी उनके प्रति आज भी विशेष आदर का भाव रखती है।

अरुणाचल प्रदेश में प्रकृति की बहुलता मात्र नहीं है, बल्कि यहाँ इसके अनूठेपन में जो सादगी और सचाई है, रमण शाण्डिल्य उसे पूरी निष्ठा के साथ सार्वजनिन करते मालूम देते हैं। डॉ. शाण्डिल्य जनजातीय समाज में जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं, वे रही हैं-भाषा-बोध, स्मृति, अनुभव, दृष्टिकोण, प्रेम, सेवा, त्याग, बलिदान, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व, सामूहिकता, भावनात्मक जुड़ाव, आत्मिक निष्ठा, लौकिक सत्य, आदिवासी चेतना, मानुष गंध, सहजानुभूति इत्यादि। अरुणाचल प्रदेश भारतीय संघ राज्य का एक ऐसा भूभाग है, जिसके सामाजिक-सांस्कृतिक लोकवृत्त को लेकर एक अजनबीयत आज भी पूरे देश में तारी है। लोग भूगोल में भटकने के कारण कई बार अरुणाचल प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में अन्तर करना भूल जाते हैं। यह भारतीय-जन की जानकारी की सीमाएँ हैं, लेकिन जब आप जानने की कोशिश करें, तो यहाँ से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के पुराने अंक बेहद मददगार साबित होते हैं। 'अरुण नागरी' इन्हीं में से एक प्रमुख पत्रिका है, जिसका संपादन रमण शाण्डिल्य के हाथों हुआ है। उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे बाबू वृंदावन दास 'ब्रज भारती' पत्रिका में रमण शाण्डिल्य के योगदान तथा सांगपो पत्रिका के महत्त्व का स्मरण करते दिखते हैं। इसी तरह सम्पूर्ण भारतीय लोक एवं वाङमय को केन्द्रित कर वरिष्ठ पत्रकार मुनीन्द्र 'दक्षिण समाचार' नाम से साप्ताहिक पत्र निकालते थे। इस पत्रिका में 'अरुण नागरी' के आरंभिक अंकों की समीक्षा देखने को मिलती है। 'अरुण नागरी' को मिली राष्ट्रव्यापी लिखित प्रतिक्रियाएँ इस पत्रिका की पहुँच और उपलब्धि को स्वतः उजागर कर देती हैं। यह पत्रिका देश के विविध क्षेत्रों प्रयागराज, वाराणसी, पटना, उज्जैन, नई दिल्ली, जयपुर, हापुड़, अहमदाबाद, बम्बई, मद्रास, बालाघाट, मथुरा, सीतामढ़ी, देवघर, दुमका आदि में पढ़ी और सराही गई, जिनके प्रेषित पत्रों को डॉ. रमण ने आदरपूर्वक इस पत्रिका में छापा। देहरादून से मिली बाबूराम वर्मा की प्रतिक्रिया का कुछ अंश द्रष्टव्य है- "अरुण नागरी के सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने पर कोटिशः बधाइयाँ। पत्रिका छोटी ही सही, परन्तु बहुत अच्छी तरह संपादित की हुई है और प्रस्तुतीकरण अज्ञेय की याद दिलाता है। 'आन्तर भारती' तो बहुत ही आकर्षक स्तंभ आपने रखा है। हिंदी और अरुणाचल भाषाओं को परस्पर निकट लाने का, समझने-समझाने का अन्यतम आयोजन है यह।''

अरुणाचल प्रदेश के पूर्व राज्यपाल और साहित्यमना व्यक्तित्व के धनी श्री माता प्रसाद जी के शुभाकांक्षाओं ने उन्हें 'अरुण नागरी' पत्रिका निकालने के लिए न सिर्फ प्रेरित किया, बल्कि वे इस उद्देश्य में सफल भी हुए। एक चितेरा अध्यापक क्या कर सकता है, इसके मिसाल हैं- रमण शाण्डिल्य। रमण शाण्डिल्य बतौर शिक्षक अरुणाचल प्रदेश में पदस्थापित हुए। अरुणाचल प्रदेश के सुदूर इलाके पेसिङ परिक्षेत्र में रहवास के बावजूद उनकी सक्रियता और कार्यकलाप आज भी स्तुत्य है। रमण शाण्डिल्य ने इस प्रदेश के हित-लाभ में ज़मीनी काम किया, हिंदी भाषा की पौध को सींचा और लेखन के बिरवे को पकने का औजार उपलब्ध कराए। सांस्कृतिक-साहित्यिक परास को चौरस करते हुए इस प्रदेश में संपर्क भाषा हिंदी को हिंदी भाषा शिक्षण के दरवाजे तक पहुँचाने में सफल सिद्ध हुए। उनके प्रयास का ही प्रतिफल रहा कि अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित उनकी पुस्तकें पटना यूनिवर्सिटी और बिहार विश्वविद्यालय में बतौर पाठ्यक्रम लगीं। डॉ. रमण शाण्डिल्य की अब तक 125 संपादित और प्रकाशित रचनाएँ हैं, तो 24 पुस्तकें उनके सृजनधर्मिता के विपुल संसार को

इंगित करती हैं। सीतामढ़ी से प्रकाशित 'नई सुबह' पत्रिका में रमण शाण्डिल्य जी पर केंद्रित अंक एक बड़ी उपलब्धि है, जिसे डॉ. दशरथ प्रजापति के संपादन में उचित आकार मिल सका। डॉ. रमण शाण्डिल्य के व्यक्तित्व और रचना-कर्म को लेकर कालीचरण झा का साक्षात्कार भी पठनीय हैं, जो उनके योगदान का गरिमावंदन करता दिखाई देता है।

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी आचार्यत्व की भूमिका में रमण शाण्डिल्य के काम की जितनी भी सराहना की जाए, कम है। लेकिन इस सचाई से बहुत कम लोग भिज्ञ होंगे कि एक समय अरुणाचल प्रदेश में हिंदी में हस्ताक्षर के कारण उनकी तनख़्वाह रोक दी गई थी। तथापि आत्मसंघर्ष की चेतस गरिमा से संपन्न डॉ. रमण ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह भी तब जब पत्रकारिता में अरुणाचल प्रदेश की चर्चा बेमानी थी। इनर लाइन जैसे विशेष प्रावधान के कारण यहाँ के बारे में बहुत कुछ खुलकर कह-सुन सकना भी संभव नहीं था। इन सब चुनौतियों के बीच डॉ. रमण शाण्डिल्य ने अपने लेखन की धार को कुंद होने नहीं दिया, वे 'सरस्वती' पत्रिका में छद्म नाम से अरुणाचल प्रदेश को लेकर नियमित लेख लिखते रहे थे। उन्होंने लिखने-पढ़ने की ऐसी दुनिया गढ़ी, जिसकी पूर्व कोई शिरोरेखा नहीं मौजूद दिखाई देती है। अरुणाचल प्रदेश की पहली हिंदी पत्रिका 'सांगपो' थी। 1970 में निकली इस पत्रिका के सूत्रधार रहे-डॉ. रमण शाण्डिल्य। यह चक्रलिखित रूप में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका थी। इसके कुल 9 अंक प्रकाशित हुए, जिसमें से एक भी अब तक पंक्ति लेखक को उपलब्ध नहीं हो सके हैं। बाद के दिनों में 'पूर्व भारतीय जनपद' का भी संपादन किया था। 1995 ई. में प्रकाशित 'अरुण नागरी' का प्रवेशांक रमण शाण्डिल्य की संपादन-दृष्टि की अविस्मरणीय मिसाल कही जाएगी, इन अंकों की राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच और स्वागत उल्लेखनीय है। यह पत्रिका वरिष्ठ पत्रकार विनोद रिंगानिया जी के सहयोग से गुवाहाटी में छपती थी।

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषा के लिए जुझारु प्रयास और व्यक्तिगत संघर्ष करने वालों में रमण शाण्डिल्य की भूमिका प्रथमकर्ता की रही है। इस दिशा में उन्होंने देश के प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी से लेकर उनके सचिव कृष्ण चंद पंत से पत्राचार स्थापित किया था। उनका इस प्रदेश से टान इतना स्वाभाविक है कि वे अरुणाचल प्रदेश को 'उर्वर्शीयम' कहा करते थे जो नाम समाजवादी चिंतक राममनोहर लोहिया ने दिया था। यद्यपि वे 'उदयाद्रि' शब्द का व्यवहार भी इस प्रदेश के सम्बोधन में किया करते थे। रमण शाण्डिल्य मनीषी साहित्यकार वासुदेवशरण अग्रवाल को याद करते हैं, जिनके अनुसार कल्हण ने इस शब्द का प्रयोग इस पर्वतीय परिक्षेत्र के सन्दर्भ में बहुधा किया है।

रमण शाण्डिल्य मनीषी परंपरा के अनुभवी अध्येता ही नहीं, अपितु अरुणाचली जनसमाज के लिए प्रेरणास्रोत और हिंदी भाषा-शिक्षण के अगुवा हैं। रमण शाण्डिल्य द्वारा संपादित 'अरुण नागरी' के कुछ अंक मुझे मिले, तो लगा जैसे ऐसी महाकृतियाँ हाथ लगी हैं, जिसके बदौलत अरुणाचल प्रदेश के बीते कल की यात्रा संभव हो सकेगी। रमण शाण्डिल्य जी के अवदान के बारे में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर श्याम शंकर सिंह अपनी किताब 'अरुणाचल प्रदेश में हिंदी: अध्ययन के नये आयाम' में लिखते

हैं-उल्लेखनीय तौर पर 'अरुण नागरी' का प्रवेशांक (जनवरी-मार्च) 1995 ई. में प्रकाशित हुआ। इसका 7वाँ-8वाँ, 9वाँ-12वाँ और 13वाँ-14वाँ अंक संयुक्तांक रूप में प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका के प्रधान संपादक धर्मराज सिंह थे। संपादन का दायित्व डॉ. रमण शाण्डिल्य पर था। दोनों का काम अवैतनिक था। पत्रिका के शुभकामना संदेश में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा था- "अरुणाचल प्रदेश में हिंदी में 'अरुण नागरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन ऐतिहासिक घटना है।"

आज की तारीख में 25 छोटे-बड़े जिलों वाला यह प्रदेश पूर्व में कैसा रहा होगा, इसके लिए 'अरुण नागरी' एक मुकम्मल दस्तावेज़ की तरह है। 'अरुण नागरी' के दूसरे अंक की संपादकीय में रमण शाण्डिल्य की आत्मस्वीकृति गौरतलब है- "20 जनवरी, 1972 को यह उत्तर-पूर्व सीमान्त अंचल (नेफा) 'अरुणाचल प्रदेश' नाम से एक केन्द्रशासित प्रदेश बनाया गया। बाद में 20 फरवरी, 1987 को यही केन्द्रशासित राज्य पूर्ण राज्य में परिवर्तित हो गया। वर्तमान अरुणाचल प्रदेश में 13 जिले हैं। यथा: तावाङ, पश्चिमी कामेङ, पूर्वी कामेङ, पापुमपारे, निम्न सुबनसिरी, ऊपरी सुबनसिरी, पश्चिमी सियाङ, पूर्वी सियाङ, दिबाङ घाटी, लोहित, चाङलाङ और तिराप। इन जिलों के मुख्यालय क्रमशः इस प्रकार हैं- तावाङ, बोम-दि-ला, सेप्पा, दोईमुख, जीरो, दापोरिजो, आलोङ, पासीघाट, इन्कियोङ, अनिनि, तेजू, चाङलाङ, खोन्सा। इनमें कुछ जिलों के नाम तो इंग्लिश (अंग्रेजी) में हैं जिनका मैंने हिंदी अनुवाद कर दिया है।"

प्रश्न है, किसी भी स्थान की ऐतिहासिकता पर कैसे गुमान किया जाए। इसके लिए लोक-साहित्य अथवा लोक-मिथक का शरण गहना स्वाभाविक है। अरुणाचल प्रदेश में तो मिथकीय नामों से सुमेलित कई ऐसे स्थान हैं, जो सहज ही आपको कुछ सोचने पर विवश कर देंगे। महामना रमण शाण्डिल्य अरुणाचली भूगोल के कुछ जगहों का जिक्र 'अरुण नागरी' के इसी अंक में करते हैं। जैसे-भीष्मकनगर, मालिनीथान, परशुराम कुण्ड, विजयनगर, जयरामपुर, महादेवपुर आदि। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ी बातों के संदर्भ में वह पूछने पर कुछ खास स्थानों को प्रकाश में लाते हैं। आलोंग से उत्तर-पश्चिम की दिशा में मणिगांग अंचल में स्थित एक पर्वत का जिक्र करते हुए वे कहते हैं कि यह पर्वत बिल्कुल शिवलिंग के आकार का है, जिसे स्थानीय तौर पर 'नामाङ शिबो' कहते हैं जो 'ओम नमो शिवाय' का अपभ्रंश रूप कहा जा सकता है। प्राक् साक्ष्य और लौकिक इतिहास इस बारे में अपनी वैज्ञानिक दृष्टि चाहे जो भी प्रकट करते हों, लेकिन डॉ. रमण शाण्डिल्य की पौराणिकता का बाना स्मरणीय अवश्य है।

ध्यातव्य है कि हिन्दू मिथकों की यहाँ साम्यता मिलना इस बात की तसदीक है कि यहाँ के जनजातीय समाज की पुरखा-परंपरा हिन्दू-आर्य-सनातन देशकाल की घोषणा से पूर्व की हैं। अर्थात् जिस धर्म को भारतीय धर्म का चोला-बाना पहनाने का राष्ट्रवादी उपक्रम जारी है, वह खुद आदिमजनों की इतिहास-संस्था से निकली और बाद के दिनों में विकसित हुई मालूम देती है। जबकि इस देश की असल सभ्यता की मुख्य धुरी आदिम समाज या कहें आदिवासी समाज ही मुख्यतया रहा है। देखें कि अरुणाचल प्रदेश के प्रकृतिजीवी आदिम जनजातियों ने मानव-मुक्ति केन्द्रित आचरण तथा मूल्यविधान को सृष्टि के आरंभकाल से

ही सर्वोपरि माना है। बौद्ध धर्म के फैलाव तथा इस जगह में रहवास के मिलते स्थापत्य इस बात की स्वमेव घोषणा करती हैं कि विश्वस्तरीय बौद्ध धर्म का अवगाहन करने वाला जनसमाज अरुणाचल प्रदेश में भी रहा है। इसके लिए बौद्ध मठ, भोटी भाषा के साहित्य तथा लामाओं की अपनी ज्ञानशाखाएँ मददगार साबित हो सकती हैं। यद्यपि हिंदी साहित्य के अध्येताओं से यह सब मालूम होने की अपेक्षा स्वाभाविक है, जिसका उल्लेख रामविलास शर्मा 'भारतीय इतिहास के साहित्य की समस्याएँ' किताब में यथेष्ट ढंग से करते हैं। वह एक जगह लिखते हैं कि- ''विष्णु पुराण के द्वितीय अंश के तीसरे अध्याय में भारतवर्ष का वर्णन है। जो देश समुद्र के उत्तर में है और हिमालय के दक्षिण में है, वह भारतवर्ष है, उसकी सन्तति का नाम भारती है। इस देश के पूर्वी भाग में किरात है, पश्चिमी भाग में यवन है। इसमें शतद्रु, चन्द्रभागा, गोदावरी, ताम्रपर्णी आदि नदियाँ बहती हैं। इस देश में कुरु, पांचाल, कोसल, कामरूप, पुण्ड्र, कलिंग, मगध, सौराष्ट्र आदि जन रहते हैं। ये सब लोग मिलकर रहते हैं और इस देश की नदियों का जल पीते हैं: आसा पिवन्ति सलिलं वसन्ति सहिताः सदा'। कवि के अनुसार ये सब लोग सहित भाव से निवास करते हैं अर्थात् मिलकर रहते हैं। यही राष्ट्रीय एकता का समर्थ आधार है।''

देखिए विडंबना कि अपनी आयातित धर्म-परंपरा का प्रचार करते आते लोग यहाँ के लोगों को जोड़ना बहुत चाहते हैं, लेकिन जुड़ना बिल्कुल नहीं। विडंबना यह भी कि यहाँ आए और सुविधानुसार भाग गए लोग अपनी हेकड़ी और दंभ में इस प्रदेश में अपने किए का कुहराम बहुत मचाते हैं; लेकिन उनकी निष्ठा, सेवाभाव और समर्पण डॉ. रमण शाण्डिल्य की तरह नहीं है जो ताउम्र यहीं का हो कर रह गए। अपनी शिष्य परंपरा का कोई दावा न करने वाले डॉ. रमण शाण्डिल्य का खुला व्यक्तित्व और खुला व्यवहार आपको अपनी मोहपाश में खींच लेता है। ऐसे मनीषी आचार्य के संपर्क, संवाद और सान्निध्य में बहुत कुछ सीखा-जाना जा सकता है, जो इस राज्य में रहवास करते हुए उन्होंने हासिल किया हुआ है। डॉ. रमण शाण्डिल्य राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में अरुणाचल प्रदेश के प्रतिनिधि चेहरे के तौर पर कई दशकों तक लेखन करते रहे हैं। वे कई बार छद्म नाम 'नीलकंठ', 'पूर्वमित्र', जानकी रमण यायावर' से लिखा करते थे, जो उन्हें अरुणाचल प्रदेश की स्थानीय समस्याओं, सन्दर्भों और सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करना जरूरी लगता था। उस समय की राष्ट्रीय तेवर और कलेवर की प्रमुख पत्रिकाएँ थीं-'कल्पना', 'जन', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'धर्मयुग', 'लोकराज' आदि। इस बारे में डॉ. रमण शाण्डिल्य 'कल्पना' पत्रिका के संपादन मण्डल से जुड़े जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का नाम आप आदर से लेते हैं, जिनका आपके उत्तर-पूर्व के लेखन से गहरा लगाव था। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी जी ने उन्हीं दिनों टीकमगढ़ से बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ मिलकर 'मधुकर' पत्रिका निकाली। बाद के दिनों में यही चतुर्वेदी जी इंदिरा गाँधी से निकटता के कारण उनके साथ पत्रकार-मण्डली में विदेशों की यात्रा में कई बार गए। डॉ. रमण जी ऐसे महानुभावों के संग-साथ मिलकर अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषा का अलख जगा रहे थे। रमण शाण्डिल्य अरुणाचली जनभाषाओं को हिंदी में पूरे सामाजिक-सांस्कृतिक गरिमा और बोध के साथ प्रकाश में लाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ दिखाई पड़ते हैं।

आज उनके योगदान को भाषा के पैरे में बाँध सकना मुश्किल है, तथापि उनकी शिष्य परंपरा में शामिल जुमसी सिराम, जोराम आनिया ताना, जमुना बीनी, तुम्बम रीबा का नाम उल्लेखनीय है।

अतः ऐसे स्वनामधन्य महर्षि आचार्य जिन्होंने अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय ज्ञान-संपदा, कला-कौशल, भाषा-समाज, संस्कृति-साहित्य आदि को राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित-प्रसारित किया है, वह इस प्रदेश की हिंदी पीढ़ी के लिए शिरोधार्य है। 'अरुण नागरी' पत्रिका के अलावे उनके लेखन का जो फलक या वितान रहा है, वह काफी विस्तृत है। आने वाली पीढ़ी को उसमें काफी कुछ जोड़ना है, उसे आगे बढ़ाना है। आत्मिक निष्ठा और पूर्ण समर्पण के साथ डॉ. रमण शाण्डिल्य ने आदिवासी चेतना की जन-संस्कृति को मुखरित किया है। यहाँ कि जन-संवेदना को हिंदी भाषा में अभिव्यंजित कर अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया है। यह कार्य दुष्कर और कंटिकापूर्ण होने के बावजूद उन्होंने अपने को अरुणाचल प्रदेश की सेवापूर्ति में खपा दिया, इस भूमिका की याद अरुणाचलवासियों के दिलोदिमाग में सदैव बनी रहेगी और बनी रहनी भी चाहिए।

(लेखकीय परिचय: लेखक राजीव गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्राध्यापक हैं तथा भारतीय समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद् द्वारा अनुदानित 'अरुणाचली लोक-साहित्य और मीडिया: अंतःसम्बन्ध एवं अंतःक्रिया' शीर्षक शोध-परियोजना कार्य पूर्ण कर चुके हैं।)

अरुणाचल प्रदेश के साहित्यिक विकास में महिलाओं की भूमिका

आरती शर्मा

भारत विभिन्न संस्कृतियों के मेल से बना राष्ट्र है। जहाँ लोगों की संस्कृति, सभ्यता, खान-पान, पहनावा, बोली-भाषा, तीज-त्योहार, अलग-अलग होने के बावजूद भी अनेकता में एकता का ही बोध होता है। भारत की यही अनेकता में एकता पूर्वोत्तर भारत में देखने को मिलती है। आठ राज्यों अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय और त्रिपुरा से मिलकर बने पूर्वोत्तर भारत को सात बहनों के नाम से भी जाना जाता है। जहाँ प्रत्येक राज्य का अपना इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, पहनावा, बोली, साहित्य, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार और प्रथाएँ एवं बोलियाँ हैं। यहाँ पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक दोनों तरह के समाज देखने को मिलते हैं। इन सभी समाजों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, जो इन्हें एक-दूसरे से भिन्न करती हैं।

भिन्न-भिन्न रंगों को खुद में समेटे हुए यह आदिवासी समाज भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हर समाज नारी और नर के साथ ही पूरा होता है। एक के भी बिना विश्व की कल्पना नहीं की जा सकती। दोनों के योगदान से ही किसी भी समाज का विकास होता है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में नारी को पूज्यनीय और सम्मानीय माना जाता रहा है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। परंतु भारतीय संस्कृति की यह परंपरा धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। स्त्री को मात्र उपभोग की वस्तु समझा जाने लगा। उसको घर-परिवार तक ही सीमित कर दिया गया। वह किसी भी प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णय का हिस्सा नहीं हो सकती थी। आज़ादी के पहले और आज़ादी के बाद की परिस्थितियाँ तो बदली पर स्त्रियों की दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

भारतीय संस्कृति पुरातन है। उसी प्रकार भारतीय साहित्य का भी अपना इतिहास है। जब तक लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था, तब तक ज्ञान मौखिक रूप से ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक पहुंचाया जाता रहा। पहले की पीढ़ी अपनी दूसरी पीढ़ी को अपने समाज के संस्कार, रीति-रिवाज, त्योहार, प्रथाएँ और परंपराओं को मौखिक रूप से ही प्रदान किया करती थी, पर लिपि के आविष्कार से ज्ञान को लिपिबद्ध किया गया और पुस्तक के रूप में पीढ़ियों के लिए उस समाज के संस्कारों, रीति-रिवाजों, संस्कृति को सँजो कर दूसरी पीढ़ी के लिए रखा जाने लगा। तब से मनुष्य अपने भावों-विचारों को लिखित रूप में व्यक्त करने लगा। आज भी लोक गीतों की परंपरा लिखित रूप में न होकर मौखिक रूप से ही प्रचलित है। खासकर आदिवासी समाज में प्रचलित लोक गीतों की परंपरा।

आदिवासी समाज भारत के लगभग सभी राज्यों में जल-जंगल-जमीन की संस्कृति को बरकरार किए हुए हैं। प्रकृति से उनका जुड़ाव ही उनकी ज़िंदगी का महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्रकृति के बिना वह अपने जीवन की

कल्पना भी नहीं कर सकते। उनकी संस्कृति में प्रकृति से संबंधित सभी चीजें सूर्य, चाँद, नदियाँ, पर्वत, झरने, पेड़-पौधे, भूमि, आकाश, पक्षी, जीव-जन्तु आदि शामिल हैं। उनका प्रकृति के प्रति यही जुड़ाव अन्य मनुष्य से इनको भिन्न बनाता है। आदिवासी समाज भले ही आज आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल करना सीख रहा है, पर अपनी प्राकृतिक संपदा को खोकर वह जी नहीं सकता है।

आदिवासी संस्कृति में भिन्न-भिन्न प्रकार की मान्यताएँ हैं, बोलियाँ हैं, रहन-सहन है, भाषा है, पहनावा है। आदिवासी संस्कृति उनके लोक गीतों में प्रदर्शित होती है। अभी तक आदिवासी लोक-साहित्य लिपिबद्ध नहीं हो सका है। लोक-साहित्य के लिखित रूप में उपलब्ध न होने के कारण इन जनजातियों के बारे में ज़्यादातर तथ्य प्रकाश में ही नहीं आ पाए हैं। आदिवासियों का लोक- साहित्य उनके इतिहास को प्रदर्शित करने वाला होता है। आदिवासी लोक-साहित्य में जनजातीय लोगों के दैनिक जीवन की इच्छाओं-आकांक्षाओं, हर्ष-उल्लासों, दुःख-अवसाद, धारणाओं-मान्यताओं, तीज-त्योहार आदि की अभिव्यक्ति और प्रकृति से संबन्धित चित्र देखने को मिलते हैं।

पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति में यह देखने को मिलता है कि यहाँ पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं अधिक काम करती हैं। चाहे परिवार को संभालना हो या व्यावसायिक कार्य हो आदिवासी महिलाएं बढ़-चढ़ कर अपने कार्यों को करती हैं। आज पूर्वोत्तर भारत की महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अपना परचम लहरा रही हैं। साहित्य भी इन महिलाओं के योगदान से अछूता नहीं है।

अरुणाचल प्रदेश भारत का ऐसा राज्य है, जहाँ सूर्य की प्रथम किरण उसका स्वागत करती हैं। अरुण और अचल दो शब्दों के मेल से बने इस राज्य में मुख्य रूप से 26 जनजातियाँ और 100 से भी अधिक छोटी जनजातियों के लोग रहते हैं। प्रत्येक जनजाति अपनी बोली या भाषा बोलती है। जनजातियों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा के आधार पर ही उनका नामकरण किया गया है। इस राज्य की प्रमुख जनजातियाँ इस प्रकार हैं- आदि, न्यीशी, ऊपतानी, तागिन, मिस्मी, खम्परी, नाईते, वांचो, तंग्शा, सिंग्फो, मोनपा, अका, इत्यादि। शिल्प कार्य में बुनाई, मिट्टी के बर्तन, और टोकरी बनाना अरुणाचल प्रदेश की समृद्ध परंपरा का प्रतीक माना जाता है। यह सब कार्य महिलाएं भी बड़े उत्साह के साथ करती हैं। खम्पती, मोनपा, खंबा और मेंबा जनजातियों की बोली के लिए स्क्रिप्ट है। यहाँ की जनजातियाँ लोक गीतों के संग्रह की परंपरा का निर्वहन करती हैं।

अरुणाचल प्रदेश में आज सक्रिय रूप से लेखन कार्य करने वाली प्रमुख महिला रचनाकार डॉ. जमुना बीनी तादर, डॉ. जोराम यालाम नाबाम हैं साथ ही अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाज को अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाली अन्य महिला लेखिकाओं में तुम्बम रीबा लिली (उस रात की सुबह उपन्यास), आइनाम इरिंग कवयित्री, सोनम वाङमू भूटिया जिनका मोनपा समुदाय और संस्कृति के विकास में उल्लेखनीय योगदान है। यह लेखिकाएँ अपने समाज की लुप्त होती संस्कृति, आचार-विचार, प्रकृति को बचाए रखने की जिजीविषा, अपने समाज के लोगों में आए सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तन, आदिवासी समाज में नारियों की दशा और व्यथा का चित्रण अपनी रचनाओं के माध्यम से कर रही हैं।

डॉ. जमुना बीनी तादर अरुणाचल प्रदेश में जन्मी मूलतः न्यीशी आदिवासी समाज से संबंध रखती हैं। इनकी रचनाओं में न्यीशी आदिवासी समाज का सजीव चित्रण मिलता है। आदिवासी समाज की लोककथाएँ, प्रकृति के साथ साहचर्य का भाव, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया पर सवाल। मिथकीय कथाओं का पुनर्पाठ आदि शामिल हैं। इनकी कविताओं में स्थानीयता को प्रमुखता मिली है। स्थानीयता पुरखे-पहाड़, शब्दावली, लोकोक्ति, मिथकीय कथाओं के रूप में सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक और साथ ही उनके शिल्प-शैली को भी इंगित करती है। इनका काव्य संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' बहुत ही प्रसिद्ध संग्रह है। पुस्तक में संकलित कविताओं का केंद्रीय भाव प्रकृति की सौंदर्यमय अनुभूति, स्वयं को बनाए रखने और निरंतर अतीत को याद कर वर्तमान से जूझने की जिजीविषा को प्रकट करती है। समय कितना जल्दी बदल जाता है, साथ ही मनुष्य उस समय से एक कदम और आगे चलता है। आज सब कुछ कितना बदल गया है। बचपन की स्मृतियों को याद करते हुए जमुना लिखती हैं "बांस के बने / इस घर में/ चौदह अंगीठियाँ हैं/ ...इन अँगीठियों के/ अगल-बगल/ पूरा परिवार बैठकर दिन भर की/ किस्से-कहानियाँ/ एक-दूसरे को सुनाता/ जल्द ही/ खा पीकर/ सो जाते सब/ कल फिर/ मुँह अंधेरे सबको/ खेतों के लिए/ निकलना है।" अब अंगीठियाँ नहीं रही, न ही पहले जैसे मिलकर कोई गप्प-शप्प ही करता है। कैसे सब कुछ पीछे छूट गया है। आधुनिकता किस प्रकार मनुष्य पर हावी हो गई कि वह अपनी पहचान ही भूलता जा रहा है।

तकनीकों के बढ़ते मायाजाल में आदिवासी भी फँसता चला जा रहा है। अपनी कविता में वह आगे लिखती हैं- "अब हमारा घर/ बनता है कंक्रीट से/ अब हम नहीं/ सोते बहुत जल्द/ रात भर/ टी. वी. मोबाइल फोन/ या लैपटॉप में डूबे रहते हैं/ हमें जोड़े रखता है/ एस. एम. एस., फेसबुक/ और व्हाट्सएप्प अब।" यही हमारा अब जीवन हो गया है। आज व्यक्ति सबके साथ होकर भी अकेला महसूस करता है। जब वह स्वयं को अकेला पाता है तो खो जाना चाहता है अपनी पुरानी स्मृतियों में। अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए, आदिवासी जीवन के मूल में जहाँ से उसने जीवन की यात्रा का शुभारंभ किया था। अपनी कविता 'बचे रहने की उम्मीद' में कवयित्री लिखती हैं- *"तुम्हारे/ आदिवासी-बोध ने बतलाया/ तुम्हें पहाड़ों और जंगलों की ओर/ भागना चाहिए/ वहाँ ऊपर/ दुश्मनों से/ महफूज रहते आए/ अनगिनत काल से/... तुम आश्वस्त होते हो/ कि/ तुम्हारे लोग तुम्हारे बाद भी जीयेंगे/ तुमसे अधिक जीयेंगे/ संसार को बतलाने/ तुम्हारी अद्भुत-अनोखी संस्कृति/ आदिवासी संस्कृति के बारे में।"* लौट जाना अपनी खुशी के लिए नहीं बल्कि अपने समाज को भविष्य के लिए बचाए रखने के लिए। आने वाली नई पीढ़ी को अद्भुत-अनोखी संस्कृति से अवगत कराने के लिए कि आज हमारी संस्कृति को किस तरह खत्म किया जा रहा है। जंगल-जल-जमीन जो आदिवासी समाज का मूल है उसको 'ग्लोबल गाँव' का नाम देकर लूटा जा रहा है। आदिवासी लोगो की खासियत यह है कि उनमें चालाकीपन का भाव नहीं होता। वह बाहरी व्यक्ति की धूर्तता को पहचान नहीं पाते और उनके बिछाए हुए जाल में फँस जाते हैं। जमुना बीनी अपनी कविता 'एक रोचक कथा' में इसी धोखा-धड़ी को व्यक्त करते हुए लिखती हैं- *"जमीन अधिग्रहण के बदले/ मुआवजा का/ लालच दिखाई/ और/ किसानों में/ पहली दफा/ मुआवज़े के/ पैसों का/ स्वाद चखा/ उनकी जीभ को/ यह जायका/ बहुत भाया/ फिर/ होना क्या था/ किसानों की/ किसानी छूट गई/ ...कितनी रोचक/ और/ मनोरंजक है/ किसानी से/ गुंडागर्दी के / रूपान्तरण की यह*

कथा।" शोषण के पूरे तंत्र का सजीव चित्रण जमुना यहाँ करती हैं। आदिवासी अस्मिता आज खतरे में हैं, जिसको बचाने के कार्य में जमुना बीनी भी अपनी कविताओं के माध्यम से सहयोग कर रही हैं।

'पहाड़', 'बचे रहने की उम्मीद', 'नाता मिट्टी का', 'नदी के दो पाट', 'देहात की याद', 'तथाकथित', 'लौटने के इंतजार में', 'वे अलसायें दिन', 'नाजुक तार', 'फुरसत', 'सुनहरा भविष्य', 'माँ', 'मिथुन', 'वे और हम', 'चाँद का कराह' आदि इनकी महत्वपूर्ण कविताएं हैं। डॉ. राहुल अपने लेख 'लौटने की चाह में बचे रहने की उम्मीद' में जमुना बीनी के कविता संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' के संबंध में लिखते हैं कि यह काव्य संग्रह "विषय वैशिष्ट्य के साथ सहज रूप में अभिव्यक्त हुआ है। संवेदना से सराबोर युवा कवयित्री की भाषा में एक प्रवाह है, जो भावों को सहज ही अभिव्यक्त करता है। एक ऐसी भाषा जिसे कवयित्री ने सप्रेम ओढ़ा है, ऐसी भाषा जिसका सच्चे अर्थों में नाभिनाल से कोई संबंध नहीं है। जमुना की कविताओं में संवाद की अधिकता है और कुछ में विवरण। ऐसा जान पड़ता है कि अरुणाचली कवयित्री का अन्तर्मन अंतः संचार कर संवाद करता है, जो कविताओं में प्रतिध्वनित है। संचार की आधुनिक तकनीक के सहारे भी संवादहीनता का यह दौर समाप्त नहीं होता बल्कि बढ़ता ही जा रहा है, तभी तो प्रकृति की तरह उद्दाम मन ऐसे में प्रकृति का साहचर्य ढूँढ़ता है। वह लौट जाना चाहता है अतीत के उन्हीं पगडंडियों पर जिस पर चलकर कंक्रीट के जंगल तक का सफर तय किया है। मन के सांकल को उद्दाम प्रकृति हौले से छू भर देती है और यह बावरा मन अप्रतिम प्रकृति की ओर लौट जाने को बेचैन हो उठता है।"

जमुना बीनी कवयित्री होने के साथ-साथ कहानीकार भी हैं। इनके द्वारा लिखा गया- 'उईमोक' लघु कथा संग्रह है। इस लघु कथा संग्रह में इन्होंने न्यीशी आदिवासी समाज की लोक कथाओं का चित्रण किया है। न्यीशी आदिवासी समाज को जानने, उनकी संस्कृति को समझने, उनके प्रकृति से जुड़ाव और प्रकृति के बीच ही जीवन बसर करने की प्रक्रिया को लेखिका ने अपने लघु कथा संग्रह के माध्यम से व्यक्त किया है। इतनी कम उम्र में ख्याति प्राप्त करने वाली जमुना बीनी के काव्य संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है।

जोराम यालाम नाबाम अरुणाचल प्रदेश की चर्चित लेखिका हैं। इनके अब तक 'साक्षी है पीपल' कहानी संग्रह, 'तानी मोमेन' लघु कथा संग्रह और 'जंगली फूल' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। जोराम गद्य साहित्य के अलावा कविताएं भी लिखती हैं। 'साक्षी है पीपल' कहानी संग्रह में कुल 8 कहानियाँ हैं। इन कहानियों की कथा के केंद्र में आदिवासी समाज की स्त्रियाँ हैं। लगभग सभी कहानियाँ स्त्री के अस्तित्व, उसकी पीड़ा, उसके संघर्ष, स्वप्न और मुक्ति की कहानियाँ हैं। अरुणाचल के ग्रामीण पारिवारिक जीवन को बिना किसी बनावटीपन और शैलीगत साज-सजावट के प्रस्तुत किया गया है। ये कहानियाँ मुखर स्वर में अरुणाचल के वन्य आंचलिक परिवेश में जीवन यापन कर रहे अशिक्षित और अर्धशिक्षित लोगों के जीवन की कथाएँ हैं। यह समाज आज भी जनजातीय रूढ़ियों को सहेजकर रखे हुए हैं। इन कहानियों में उन परिवारों में व्याप्त जनजातीय रूढ़ियों से ग्रस्त विसंगतियाँ, शोषण और संघर्ष का यथार्थ चित्रण है। सभी कहानियाँ स्त्री केन्द्रित हैं, जो जनजातीय स्त्री विमर्श को नया आयाम देती हैं। इन कहानियों में लेखिका ने दर्शाया है कि यहाँ

की स्त्रियाँ सुख और दुःख समान रूप से स्वीकार करती हैं। अपनी मर्जी दर्शाते हुए पति की एक के बाद एक शादियाँ करवाती हुई, दोनों वक्त भोजन पकाती हुई, खेत-जंगल में काम करती हुई, सामूहिक उत्सवों में स्थानीय शराब का प्रबंध करती हुई, बार-बार छली जाती हुई, टूटती हुई जीवन जीती हैं। ये स्त्रियाँ सबसे छोटी पत्नी के रूप में अपमान सहती हुई जीती हैं। कभी-कभी वे किसी सौत के हम उम्र पुत्र की ओर आकृष्ट होती हुई दिखाई देती हैं। यालाम की कहानियों में जनजातीय स्त्रियों के जीवन के ऐसे टूटे बिखरे रूप छाए हुए हैं, जो आज की तथाकथित आधुनिक सभ्यता और संस्कृति से रूबरू करवाते हैं।

'साक्षी है पीपल' कहानी संग्रह की मुख्य कहानी है। प्रकृति से वार्तालाप करती हुई लेखिका लिखती हैं- "यहाँ की हवा में चुभन सी क्यों है? क्यों पेड़ों की छायाएँ विचित्र तरीके से नाचती हैं? ये पीपल का पेड़ जैसे कुछ सुन रहा है। जिसके कान हैं, वे सुन लें। इस वादी ने उन्हें देखा था और समझा था। क्यों न हों, वे इसके अपने थे, बेहद अपने। यहाँ के पेड़ों की शाखाओं पर आज बंदर इंतजार करते हैं कि कब कोई मकई की खेती करे और नन्हें-नन्हें कई पैर उनका पीछा करें और वे जीभ दिखाकर भाग जाएँ।" संगलों नदी के तट पर बसा गाँव जो गाँव वालों के लिए माँ है। पास ही जंगल है जिसमें से शेर और अन्य जानवरों की आवाज़ें रातों में लोगों में भय पैदा करती है। एकाएक पड़ोसी गाँव के लोग संगरी गाँव पर रातों-रात तीर कमान से हमला कर सबको मार डालते हैं। बची हुई औरतों को खूंटी से बाँधकर दासी बना लेते हैं। इस हमले का कारण है एक रंगबिया जो संगरी में आता जाता रहता है और वह बाहर से बीमारी लेकर आता है। ऐसे हमले और हादसे उन गाँवों में होते रहते हैं, जिसका साक्षी एक पीपल का पेड़ है जो अरसे से इस तरह की मारकाट को देखता रहा है। यही यहाँ का जीवन है।

कोई भी समाज पूर्णतः निर्दोष नहीं होता। उसमें कोई न कोई कमी अवश्य ही होती है। भारतीय समाज तो वैसे भी स्त्रियों के प्रति क्रूर रहा है। न्यीशी आदिवासी समाज में भी बहु पत्नी प्रथा का प्रचलन रहा है। पत्नी न चाहते हुए भी पति के दूसरे-तीसरे-चौथे विवाह को सहर्ष स्वीकार करने के लिए बाध्य होती है। पति अपनी सभी पत्नियों और बच्चों के साथ एक ही घर में रहता है। बच्चे इन सब चीजों के इतने अभ्यस्त हो चुके होते हैं कि वह अपने पिता से सवाल ही नहीं करते। यालाम की कहानियों में पुरुष पात्र कमज़ोर और विलासी प्रवृत्ति के हैं जो केवल स्त्रियों के प्रति अधिपथ्य का भाव रखते हैं। अधिकतर पुरुष पात्र कोई बड़ा काम नहीं करते, सिवाय "दाब" (तलवारनुमा छुरी) उठाए पत्नियों को धमकाने के। परिवार की सभी स्त्रियाँ अपने खेत में काम करती और स्थानीय दारू "आपोङ" बनाती हैं। आपोङ का सेवन दैनिक खान-पान का हिस्सा होता है ।

यालाम की कहानियों में जनजातीय स्त्रियों के जीवन के ऐसे टूटे बिखरे रूप छाए हुए हैं, जो कि आज की तथाकथित आधुनिक सभ्यता और संस्कृति से रूबरू होते हैं। लेखिका इन असाधारण दांपत्य संबंधों को बिना दुराव के भावमय शैली में प्रस्तुत करती हैं।'क्या सच में वे कभी मिले थे' कहानी स्त्री-पुरुष संबंधों के अपरिभाषित स्वरूप को प्रस्तुत करती है, जहाँ स्त्री छोटी उम्र से ही अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए कई-कई बार पुरुषों के छल का शिकार होकर अंत में आत्महत्या कर लेती है। यह कहानी जनजातीय स्त्रियों के प्रति गाँव से शहर तक व्याप्त पुरुष की भोगवादी और वस्तुवादी मानसिकता को चित्रित करती है। ये कहानियाँ

यहाँ की स्त्रियों के प्रति विशेष सहानुभूति और संवेदना को व्यक्त करती हैं। इन कहानियों में लेखिका द्वारा अनुभूत यथार्थ परिवेशगत मान्यताओं के साथ उजागर हुआ है। अरुणाचल प्रदेश के गाँव और कस्बे (जोराम और ज़ीरो) इन कहानियों में जीवित हो उठे हैं। यहाँ के ग्रामीण जीवन का चित्रण लेखिका की विशेषता है।

इनका 'जंगली फूल' उपन्यास अरुणाचल प्रदेश की न्यीशी जनजाति या कहें तानी समुदाय (जिसमें वहाँ की पाँच जनजातियाँ शामिल हैं) के बीच प्रचलित एक मिथकीय चरित्र 'तानी' को आधार बनाकर लिखा गया है। एक तरह से यह उपन्यास तानी के चरित्र की पुनर्रचना का प्रयास है। इस उपन्यास के लिए लेखिका को वर्ष 2019 का 'अयोध्याप्रसाद खत्री सम्मान' भी मिला है। 'जंगली फूल' उपन्यास एक कबीले के संगठित होने की यात्रा है, जिसका नेतृत्व तानी करता है। अरुणाचल प्रदेश के तानी समुदाय के लोग आबोतानी को 'आदि पिता' मानते हैं। तानी से जुड़ी ढेरों लोक कथाएँ उस समाज में मौजूद हैं। लेकिन उन लोक कथाओं में तानी का जो रूप सामने आया है, वह सकारात्मक नहीं है। वहाँ तानी स्त्री-लोलुप और बलात्कारी के रूप में दिखाई पड़ता है। उसका एक ही उद्देश्य है अपना वंश बढ़ाना और इसके लिए वह अपनी शक्ति का उपयोग स्त्रियों पर करता है। लेखिका तानी के जीवन से जुड़ी इस छवि पर प्रश्न चिह्न लगाती है। लेखिका सहज भाव से पूछती है कि- "क्या वंश बढ़ा लेने मात्र से ही कोई अमर हो जाता है? कोई तो वजह रही होगी जिसके कारण आज तक लोग उसके नाम को भूल नहीं पाए हैं! कोई तो ऐसी वजह रही होगी जिसके चलते लोगों ने उसे पिता कहा होगा।" (जंगली फूल, पृ. 3)

यहाँ लेखिका ने तानी के चरित्र को पुनःसृजित करने का प्रयास किया है। लेखिका ने तानी के भीतर की मनुष्यता, स्त्री के प्रति सम्मान की दृष्टि, अपने कबीले के प्रति प्रेम और पूर्ण निष्ठा की भावना को व्यक्त किया है। अरुणाचल के समाज में, विशेषकर न्यीशी समाज में ऑपरेट हो रहे सामंतवाद और स्त्री के शोषण तथा पुरुषों के विशेषाधिकार को 'जंगली फूल' उपन्यास के एक प्रसंग से खूब अच्छी तरह समझा जा सकता है। लेखिका बताती हैं- "विवाहित महिला किसी गैर-मर्द के साथ पकड़ी गई तो नर्क से भी बदतर सजा उसे मिलती थी।...कई-कई दिनों तक उसे भारी-भरकम लकड़ी के साथ बांध दिया जाता था और उसकी मर्जी के खिलाफ उसके शरीर के साथ कई तरह से खिलवाड़ किया जाता।...मर्द कई-कई पत्नियाँ रख सकते हैं। उनके लिए कोई खास सजा तय नहीं है!" (पृ. 18)

अरुणाचल के आदिवसी समाज में स्त्री को उसकी माँ के गर्भ में आने से ही विवाह के लिए खरीद लिया जाता है। कोई भी व्यक्ति कई सारे मिथुन और ढेर सारी कीमती वस्तुएँ देकर पैदा होने से पहले ही लड़की को विवाह के लिए खरीद सकता है। 6-8 साल की होने पर लड़की को अपने ससुराल जाना पड़ता है। पारिवारिक आर्थिक स्थिति के चलते और लड़के वालों के दबाव के चलते लड़की इनकार भी नहीं कर पाती।

'जंगली फूल' उपन्यास में सिमांग भी काफी समय तक अपने पति के साथ अपने संबंध को ढोती है, यही सोचकर कि- "अगर वह खुद पति को छोड़ देती है, तो उसको वे सारे मिथुन और सारा सामान वापस करना होगा जो उन लोगों ने उसके माँ-बाप को दिए थे।" (पृ. 66) किसी पुरुष के हाथों बिकी हुई स्त्री, जो उसकी पत्नी कहलाती है, उसकी वास्तविक हैसियत और मर्यादा क्या होती है- इसे उपन्यास के उस प्रसंग में देखा जा सकता है जब तानी से मिलने के अपराध में सिमांग का पति तापिक सिमांग और तानी दोनों को कैद कर देता है। वह सिमांग को धमकाता है- "मेरी खरीदी हुई औरत, तेरी इतनी हिम्मत?"(पृ. 69) यहाँ पत्नी का दर्जा महज एक खरीदी हुई औरत से ज्यादा नहीं है। इस प्रकार उपन्यास में स्त्री-पुरुष के संबंध, प्रचलित

मान्यताओं को देखने का अलग नज़रिया और आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुष के अधिकारों को बखूबी व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार इनका 'तानी मोमेन' लघु कथा संग्रह आदिवासी समाज की लोक कथाओं पर आधारित लघु कथा संग्रह है, जिसमें आदिवासी समाज की लोक परम्पराएँ अपनी जीवंतता के साथ चित्रित हुई हैं।

अतः हम इन महिला रचनाकारों के साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज खासकर आदिवासी समाज की स्त्रियों की दशा-दुर्दशा को समझा जा सकता है। आदिवासी समाज की संस्कृति, परंपरा, धर्म, इतिहास को समझा जा सकता है। उनके प्रकृति प्रेम को समझा जा सकता है। स्पष्टत: भारतीय संस्कृति परंपरा का मूल इनकी जड़ों में ही बसा हुआ है चाहे वह संस्कृति खान-पान, रहन-सहन, या नृत्य-शैली, या वाद्ययंत्रों की हो। आदिवासी समाज ही भारतीय संस्कृति का मूल वाहक और संरक्षक भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. अनुशब्द. (2017). *पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य*. वाणी प्रकाशन : नई दिल्ली.
2. गुप्ता, रमणिका (2008). *आदिवासी साहित्य यात्रा*. राधाकृष्ण प्रकाशन : नई दिल्ली.
3. जमातिया, मिलन रानी (अनु.). (2014). *कॉकबरक की प्रतिनिधि कविताएं*. मानव प्रकाशन : कोलकाता.
4. पाण्डेय, नन्दकिशोर. (2022) *अरुणाचल प्रदेश की लोक कथाएँ*. प्रभात प्रकाशन: नई दिल्ली
5. तादर, जमुना बीनी. (2018). *जब आदिवासी गाता है*. नई दिल्ली: परिंदे प्रकाशन.
6. तादर, जमुना बीनी. (2022). *अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ*. समय साक्ष्य प्रकाशन: देहरादून.
7. नाबाम, जोराम यालाम. (2019). *जंगली फूल*. नई दिल्ली: अनुज्ञा प्रकाशन.
8. नाबाम, जोराम यालाम.(2013) *साक्षी है पीपल*. यश प्रकाशन : नई दिल्ली.
9. सं. पन्त, कैलाशचन्द्र. अक्षरा पत्रिका. अंक 199, अक्टूबर-2021, भोपाल
10. तिवारी, विनोद कुमार (संयुक्तांक) *पक्षधर पत्रिका* . जुलाई-दिसंबर, 2018 – जनवरी-जून 2019, अंक 25-26. नई दिल्ली.
11. सं. नारायण शिव (संयुक्तांक), *चिन्तन सृजन पत्रिका*. जनवरी- मार्च 2020 से अक्टूबर- दिसम्बर 2021, अंक 1-8, आस्था भारती : नई दिल्ली.
12. प्रधान सं. शर्मा, बीना. *समन्वय पूर्वोत्तर पत्रिका.* अप्रैल-जून, 2021, अंक -3, केंद्रीय हिन्दी संस्थान : दिल्ली.
13. प्रधान सं. शर्मा प्रो. बीना. *समन्वय पूर्वोत्तर पत्रिका.* अप्रेल-जून, 2020, अंक -2, केंद्रीय हिन्दी संस्थान : दिल्ली.
14. सं. त्रिपाठी, प्रदीप. कंचनजंघा पत्रिका. अंक-1, जनवरी-जून, 2020.
15. (48) डॉ. जमुना बीनी तादर जी के साथ नीशी जनजाति के घर परिवार की महत्वपूर्ण जानकारी - YouTube
16. जमुना बीनी की कविताएँ आदिवासियत की उपेक्षा का प्रतिकार हैं (samkaleenjanmat.in)
17. हिंदी RGU : हम चलें, तो बढ़े सब: लोकानुभव और स्मृति से जुड़ी हैं जमुना बीनी की कविताएँ : प्रो. साकेत कुशवाहा (hindirgu.blogspot.com)
18. जोराम यालाम नाबाम की कविताएँ जीवन की आदिम सुंदरता में शामिल होने का आमंत्रण हैं (samkaleenjanmat.in)
19. साक्षी है पीपल - एम. वेंकटेश्वर (sahityakunj.net)

(***लेखकीय परिचय:*** *आरती शर्मा त्रिपुरा विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोध-अध्येता हैं।)*

पूर्वोत्तर भारत की औपन्यासिक अभिव्यक्ति

अरविंद कुमार यादव

उपन्यास साहित्य की एक प्रमुख विधा है। इसमें व्यक्ति और समाज के अंतरसंबंधों को व्यक्त करना अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक सरल है। आकार में सामान्यतः दीर्घ होने के कारण पाठकों से यह अधिक श्रम की माँग करता है। उपन्यास का आस्वाद विकसित होने के उपरांत पाठक के समक्ष नई दुनिया के द्वार खुल जाते हैं। पूर्वोत्तर भारत को जानने की दृष्टि से हिंदी पाठकों के समक्ष हिंदी उपन्यास ने यही द्वार खोला है। पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न समाजों को समझने के लिए हिंदी उपन्यास एक उचित माध्यम हो सकता है। उत्तर-पूर्व के लगभग सभी राज्यों को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखे गए हैं। इन सभी उपन्यासों की विषयवस्तु में वैविध्य है। विषय वस्तु के वैविध्य और विस्तार की क्षमता के कारण हिंदी उपन्यास इनकी अभिव्यक्ति का प्रमुख स्वर बना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से पूर्वोत्तर के विषय में हिंदी में उपन्यास ही नहीं बल्कि साहित्य सहित अन्य माध्यमों का अभाव लंबे समय तक बना रहा। लेकिन कालांतर में हिंदी उपन्यास ने इस स्थान को भरने का महत्वपूर्ण कार्य किया। ब्रह्मपुत्र उपन्यास से प्रारंभ हुआ यह क्रम निरंतर जारी है। हाल के वर्षों में यहाँ के हिंदी उपन्यास लेखन में तेजी आई है। हिंदी उपन्यास के संदर्भ में यह सुखद है कि कुछ वर्षों से यहाँ के स्थानीय रचनाकार भी सृजनात्मक साहित्य का लेखन कर रहे हैं।

प्रस्तुत शोध-आलेख में पूर्वोत्तर भारत के राज्यों पर केंद्रित उपन्यासों की चर्चा की गई है। इसमें उपन्यासों का क्रमवार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिससे कि यहाँ के हिंदी उपन्यासों का विकास क्रम समझने में सुविधा हो। पूर्वोत्तर भारत की हिंदी में प्रथम औपन्यासिक अभिव्यक्ति 'ब्रह्मपुत्र' के माध्यम से हुई। नदी अपने किनारे बसने वाले समुदायों की संस्कृति निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस कृति की रचना की गई है। उपन्यास के केंद्र में ब्रह्मपुत्र के तट पर बसा दिसांगमुख है। इस उपन्यास में वर्णित कुछ घटनाएँ माजुली में घटित होती हैं। विषय की दृष्टि से इसके केंद्र में स्वतंत्रता संघर्ष में दिसांगमुख की भागीदारी है। इस उपन्यास में दिसांगमुख अपनी समग्रता में हमारे समक्ष आता है। ब्रिटिश शासन के अंतर्गत सरकारी दमन एवं शोषण है तो देवकांत के नेतृत्व में इसका प्रतिकार भी है। ब्रह्मपुत्र की बाढ़ है, जिसके माध्यम से वह स्वयं को अभिव्यक्त करता है। इस बाढ़ के साथ ही आता है ध्वंस । बाढ़ के इसी ध्वंस में सृजन का बीज बिंदु भी छिपा होता है। कथानक का विकास होते-होते आजादी के संघर्ष से जुड़ता है। इसका समय भारत छोड़ो आंदोलन से लेकर स्वाधीन भारत के कुछ बाद तक का है। चूंकि उपन्यास का विस्तार परतंत्र भारत और स्वतंत्र भारत दोनों में ही है, इसलिए यह उपन्यास स्वप्न, संघर्ष और यथार्थ का संगम है। दिसांगमुख में स्वातंत्र्य चेतना देवकांत के आगमन और नारायण दरोगा के अत्याचार से विकसित होती है। इस उपन्यास का वितान विस्तृत होते हुए जब स्वतंत्रता संघर्ष को छूता है, तब भारत माता के स्वरूप, उसकी पीड़ा, मुक्ति आदि पर भी चर्चा होती है। भारत माता कौन है? की पर्याप्त चर्चा स्वतंत्रता के संदर्भ में हुई

है। देवकांत कहता है कि भारत माता कोलकाता में है और इसी भारत माता के संदर्भ में देवकांत की माता की दुर्दशा का चित्रण हुआ है। दोनों माताओं का साझा दुख उन्हें एक बिंदु पर लाकर खड़ा कर देता है। वहीं अतुल कहता है कि भारत माता के कई रूप हैं लेकिन वह केवल दिसांगमुख माता को ही जानता है। इसलिए वह दिसांगमुख में ही रहकर स्वतंत्रता के संघर्ष को धार देने की बात कहता है। भारत माता का स्वरूप नीरद के वक्तव्य से अधिक स्पष्ट होता है। वह कहता है कि- "भारत माता की जय! यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि भारत माता को तो आप लोग नहीं जानते, और आप तो अपनी-अपनी माता को ही जानते हैं। हमारे देश में तो कई प्रांत हैं। बंगाल, असम और उड़ीसा, मद्रास, यू.पी. और बिहार ; पंजाब, फ्रंटियर और बंबई। हमारा देश तो विशाल है। यहाँ सात लाख गाँव हैं। ये सात लाख गाँव माताएँ मिलकर एक ही नाम से पहचानी जाती हैं; वह नाम है भारत माता।"[i] इसी भारत माता की मुक्ति का स्वप्न संघर्ष दिसांगमुख में बुना जा रहा था। उपन्यास का आरंभ ब्रह्मपुत्र नदी की कथा से होता है, लेकिन समापन देवकांत की शहादत और राखाल काका के मोहभंग से होता है। अतुल, राखाल और नीरद ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती देते हुए छः-छः माह की सजा स्वीकार की लेकिन जुर्माना नहीं भरा। इन तीनों के संघर्ष और सजा के माध्यम से गांधी जी का सत्याग्रह दिसांगमुख तक की यात्रा तय कर चुका था। इसमें जनभागीदारी तो कम थी, लेकिन संभावना भी इसी में अधिक थी। राखाल काका स्वतंत्रता के पश्चात भी अपनी पेंशन बहाल नहीं करवाते हैं क्योंकि उनके अनुसार यह वह स्वतंत्रता नहीं थी जिसकी उन्होंने कल्पना की थी। यह मोहभंग लोगों की आकांक्षाओं-अपेक्षाओं पर सरकारों के खरे न उतरने की ओर संकेत करता है।

इस कड़ी में मुक्तावती एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 1958 ई. में हुआ। इसके लेखक बलभद्र ठाकुर हैं। इस उपन्यास के केंद्र में मणिपुरी संस्कृति (विशेष रुप से मैतेई संस्कृति) और राजशाही के प्रति मणिपुरी जनता का विद्रोह है। उपन्यास की कथावस्तु ऐतिहासिक है, लेकिन विधागत आवश्यकता के अनुरूप कल्पना शक्ति का सहारा लिया गया है। उपन्यास के कथानक का काल 1925 ई. से 1936 ई. के बीच का है। मणिपुरी समाज और संस्कृति को स्वर देते समय लेखक सुंदरता के प्रति न अधिक मोह प्रदर्शित करता है और न ही विकृतियों से विमुख होता है। इसी कारण मणिपुरी समाज, संस्कृति, राजशाही और विद्रोह आदि को अभिव्यक्त करने में उपन्यासकार सफल हुआ है। उपन्यास के दो प्रमुख पात्र शैलेंद्र और चंद्रावत मार्क्सवाद और गांधीवाद की पैरोकारी करते दिखाई देते हैं। चूँकि लेखक स्वयं मार्क्सवादी रुझान का था और इसके साथ ही उपन्यास के प्रकाशन वर्ष के दौरान वामपंथ और गांधीवाद की विशेष चर्चा रही है। इस कारण लेखक इन दोनों विचारधाराओं से प्रभावित होकर कल्पना शक्ति के सहारे दो भिन्न विचार रखने वाले युवाओं को सृजित कर मार्क्सवाद और गांधीवाद के द्वंद्व को विकसित करते हुए समन्वय के बिंदु तक पहुँचता है। इसके संदर्भ में इंद्रचंद्र नारंग लिखते हैं कि - "इस मुक्तावती उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है- विचारों और आदर्शों का समन्वय। गांधीवाद और मार्क्सवाद का अर्थात गांधीवादी और मार्क्सवादी पात्रों के सिद्धांतगत द्वंद्व के भीतर से उनके पारस्परिक प्रेमपूर्ण जीवन का बड़ा सुंदर समन्वय बलभद्र ठाकुर ने प्रतिष्ठित किया है।"[ii] इन दोनों पात्रों के वैचारिक चिंतन के केंद्र में भारत एक राष्ट्र के रूप में निरंतर बना रहता है। चूंकि शैलेंद्र

बंगाली था और चंद्रावत मैतेई इसलिए प्रांतवाद का जिक्र होना स्वाभाविक था। दोनों ही पात्रों में प्रांतवाद की दरार नहीं दिखाई पड़ती है। लेकिन वह ऐसे अन्य पात्रों के प्रांतवाद का प्रतिवाद करते हुए भेदभाव रहित एक भारत को रचते नजर आते हैं। उदाहरण के लिए चंद्रावत-श्रीअचउ सिंह और शैलेंद्र- अनिल घोष- अघोर बाबू- हरेंद्र चटर्जी के संवादों में दूसरे जातीय समूह और प्रांत के प्रति हीन भाव देखी जा सकती है। संवाद में शैलेंद्र और चंद्रावत दूसरी जातीय अस्मिताओं को सम्मान से देखने के तो वहीं अनिल घोष और श्रीअचउ सिंह अन्य समुदाय के प्रति घृणा प्रकट करने वाले प्रतिनिधि पात्र हैं। दो समुदायों और प्रांतों के बीच के इस दुराव को देखकर शैलेंद्र दुखी हो जाता है और कहता है- "तुम तो मुसका रहे हो चंद्रावत, लेकिन तुम्हारे ही इस उदाहरण से क्या यह घातक संभावना नहीं प्रकट होती कि कहीं जातिवाद और प्रांतवाद की यह संकीर्णता किसी दिन भारत भूमि को भी खंड-खंड न कर दे।"[iii] दरअसल शैलेंद्र की यह चिंता किसी भी भारतीय की हो सकती है। राष्ट्र की बेहतरी की चिंता हमारे समग्र चिंतन में प्राण वायु की तरह प्रवाहित होती रहती है। हमारे सभी कर्मों में इसकी झलक देखी जा सकती है। शैलेंद्र इसी चिंतन में जातिवाद और प्रांतवाद को राष्ट्र की एकता के लिए विनाशकारी मान रहा है। उसकी चिंता यह है कि जैसे-जैसे यह रोग बढ़ेगा राष्ट्र की आत्मा और काया क्षीण होती जाएगी।

खम्ब-थोइबी उपन्यास का प्रकाशन 1963 ई. में हुआ। इसके लेखक श्रीलोइतोंगबम कालाचान्द सिंह हैं। इस उपन्यास की कथावस्तु मणिपुर के जनजीवन और संस्कृति से संबंधित है। कथा का आधार खम्ब-थोइबी की पौराणिक कथा है। इसमें खम्ब और उसकी बहन खम्नु के माध्यम से कथानक के काल में मणिपुरी समाज में व्याप्त गरीबी को दर्शाया गया है। राज दरबार कथा के केंद्र में है, जहाँ खम्ब को यथोचित सम्मान मिलता है और वहीं के एक दरबारी नोंगबोन से चुनौती भी मिलती है। राजकुमारी थोइबी खम्ब से प्रेम करती है लेकिन नोंगबोन थोइबी को पाने का षड्यंत्र करता रहता है। अंततः खम्ब नोंगबोन को पराजित कर थोइबी को पाने में सफल हो जाता है। इसी के साथ उपन्यास की समाप्ति हो जाती है।

कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु' कृत 'रक्तयात्रा' नागा जनजीवन और उनके संघर्षो पर केन्द्रित महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1978 ई. में हुआ। उपन्यास को तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग 'आदिम जीवन : शिरच्छेदक', द्वितीय भाग 'युगान्तर : गोरे आए' और तृतीय भाग 'नया सवेरा : संघर्षों की राह है। इन तीन अध्यायों के अंतर्गत क्रमशः उनकी आदिम जीवन शैली और नरमुंड शिकार, ब्रिटिश सरकार से संघर्ष और नए वृहत्तर नागालैंड के स्वप्न के साथ भारत सरकार से संघर्ष है। प्रथम अध्याय पूर्ण रूप से काल्पनिक होकर संस्कृति की कथा कहता है। यह पूरा अध्याव हेड हंटर्स, त्योहार और जीवन की आदिम परिस्थितियों पर केंद्रित है। अध्याय में लेखक संस्कृति की कथा कहने में सफल हुआ है, लेकिन जहाँ वह प्रेमी-प्रेमिका के यौन संबंधों की कथा कहता है वहाँ वह अनावश्यक प्रतीत होता है। ऐसा वर्णन पाठकीय रूचि को विकसित करने के उद्देश्य से किया गया हो, ऐसा संभव है। द्वितीय और तृतीय अध्याय ऐतिहासिक है। उपन्यास का प्रारंभिक पात्र केदीलिनो है, जिसकी तीन पीढ़ियों के माध्यम से नागाओं के समग्र जीवन का

विकासोन्मुख चित्र अंकित किया गया है। दूसरे अध्याय में संगठित नागा राष्ट्र की संकल्पना उभर कर सामने आती है, जिसका प्रतिनिधि पात्र वियाले है। तीसरी पीढ़ी के माध्यम से उनका उद्देश्य और अधिक स्पष्ट होने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप संघर्ष भी तीव्र हो जाता है। इस पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र विजेलू और विचो हैं। विजेलू और विचो के संवाद से नागा राष्ट्र के लिए हो रहे संघर्ष और यथार्थ की विसंगतियाँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। इस हिंसक संघर्ष पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए विचो अपने भाई विजेलू से पूछती है कि – "पर यह तो बताओ कि यह खून-खराबा कब तक चलता रहेगा?... पर उन नागाओं की जान का बदला किससे लोगे जिन्हें खुद हमने मारा है।"[iv] विचो का यह प्रश्न इस ओर भी संकेत करता है कि समय-समय पर नागाओं के बीच से ही इस सशस्त्र संघर्ष की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह खड़े किए जाते रहे हैं। इन दोनों पात्रों में से विजेलू नागा राष्ट्र को सच होते देखने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है तो विचो स्वाधीन नागा राष्ट्र और उसके लिए हो रहे संघर्षों पर प्रश्नवाचक चिन्ह छोड़ते हुए चलती है। कथा का समापन लेखक ने आदर्शवादी ढंग से किया है, जहाँ पर क्रूर विजेलू अंततः शांति का पक्षधर हो जाता है। नागा संस्कृति और संघर्ष को समझने के लिए यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

सन् 1983 ई. में प्रकाशित 'जय आइ असम' नवारुण वर्मा का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी कथावस्तु एक आंदोलन के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक साथ कई समस्याओं के साथ जुड़ती है। बाहर से आकर बसे लोगों और मूल असमिया के बीच के द्वंद्व को यह उपन्यास सुंदर ढंग से प्रस्तुत करता है। यह प्रश्न जब भी सामने आता है एक गंभीर संकट खड़ा हो जाता है। अमृत फूकन और उनके साथी वकीलों के बीच इस मुद्दे को लेकर जो बहस होती है, वह द्रष्टव्य है- "जो लोग विदेश से आकर पिछले तीस सालों से वैध रूप से अवैध रूप से बसते रहे हैं, चुनावों में वोट भी डालते रहे हैं, जमीन-जायदाद, दूकानें आदि बना ली हैं, उन्हें अकस्मात विदेशी घोषित कर निकाला भी कैसे जा सकता है?"[v] इस बहस का सार यह निकलता है कि बाहरी लोगों को चिन्हित कर लेने के पश्चात भी परिणाम नगण्य ही रहेगा। एक बड़ी आबादी को कहाँ भेजा जाएगा और कैंपों में रखने पर सरकार और जनता पर ही भार बढ़ेगा, साथ ही नागरिकता संबंधी अंतरराष्ट्रीय समझौते भी एक बाधा है। इस उपन्यास के केंद्र में जो परिवार है, वह आंदोलन के विरोधाभासी स्वरूप को प्रकट करता है। अमृत फूकन की बेटी नमिता जय आइ असम के नारे लगाती है, बेटा नरेन इसके विरुद्ध है जबकि अमृत फूकन बीच का कोई रास्ता निकालना चाहते हैं। इन्हीं के परिवार में भोला नौकर है जो पूर्वी बंगाल से आकर यहाँ बसा था। यह सारी स्थितियाँ उस विरोधाभास का निर्माण करती हैं, जिसे पाटा जा सकना मुश्किल प्रतीत होता है।

इस उपन्यास में वर्णित समस्या असम की स्थाई समस्या बन गई है। यह समस्या पिछले कई दशकों से असमिया मानुष और उसकी अनुपम संस्कृति को भयभीत कर रही है। यहाँ तक कि जन भावनाओं को उभारकर राजनीतिक दल का निर्माण भी हुआ। कई दल इन्हीं समस्याओं को उभार कर सत्ता के शीर्ष पर भी पहुँचे, लेकिन समस्या का निदान नहीं हो सका। प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु इसी के इर्द-गिर्द घूमती है।

अमृत फूकन, नमिता, नरेन, मालती एक ही परिवार के सदस्य हैं। इनमें से कोई न कोई पात्र लगभग हर जगह उपस्थित है, वह अपनी बात कहता है और काम करता है। दिलचस्प बात यह है कि उपर्युक्त सभी पात्र भिन्न वैचारिक धरातल पर खड़े हैं। यह समस्या जब भी अपना सिर उठाती है तो असम में शरणार्थी शिविरों की बाढ़ सी आ जाती है, जैसे ब्रह्मपुत्र की बाढ़ ने शिविरों का रूप धारण कर लिया हो।

उपन्यास का सौन्दर्य अंतिम वाक्य तक विद्यमान है। उपन्यासकार कहीं भी अपने विचार या पूर्वाग्रह थोपते नहीं दीखता है। इस प्रकार के आंदोलनों की जैसी परिणति होती है, उपन्यास भी उसी प्रकार का है। कोई सुझाव नहीं है, कोई हल नहीं है और न ही कोई लेखकीय वक्तव्य। पात्र अपने-अपने काम में रत, विचार मग्न हैं और कथा बढ़ती जाती है। आंदोलन की नायिका अस्पताल में बिस्तर पर पड़ी है। न आंदोलन समाप्त हुआ है, न सरकार का दमन चक्र और न ही नमिता जैसे आंदोलनकारियों का हौसला पस्त हुआ है। सरकारी दमन ने तटस्थ या सरकार समर्थकों के भीतर आंदोलन के प्रति सहानुभूति जगा दी है। इसके दो प्रमुख उदाहरण संदीप बरुआ और अमृत फूकन हैं।

'मुक्ति' उपन्यास वर्ष 1999 ई. में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक डॉ महेंद्र नाथ दुबे हैं। इसकी कथा असम और तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में घटित होती है। स्वतंत्रता के पश्चात हुए विभाजन और उससे उपजी त्रासदी को बहुत सुंदर ढंग से इस उपन्यास में पिरोया गया है। बँटवारे के समय अधिकांश लोग क्या सोच रहे थे, इसका चित्रण सुक्तादेवी- साँवरी संवाद में द्रष्टव्य है- "पागल हुई हो। बँटवारा देश का हुआ है न कि आदमियों का। अपनी धरती जमीन, घर- बार, बाग-बगीचा किसे प्यारा नहीं ... हिंदू होने भर से हिंदुस्तान वाले हिंदुओं को अपनी छाती में नहीं बसा लेंगे और मुसलमान होने भर से ही पाकिस्तान वाले किसी मुसलमान को सिर माथे नहीं चढ़ाएंगे।... संघर्षों से भागने पर मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति मिलेगी संघर्षों का सामना करने से।"[vi] विभाजन ने हिंदू-मुसलमान के आपसी विश्वास को खंडित कर दिया था, वही विश्वास जो विध्वंस की कई-कई परतें मिटाकर सृजन की कहानी लिखता है। उपन्यास के प्रारंभिक हिस्सों में इसी विश्वास के बनने और मिटने की कहानी कही गई है। जलील, चौधरी वलूलहक, दीनानाथ तिवारी, पंडित सुलोचन प्रसाद मिश्र और मैडम शिएरी जैसे पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि आदमी जिस जमीन पर रहता है, वही उसका गाँव-जवार और देश होता है। भला इससे परे देश क्या हो सकता है। विभाजन के समय यही सोच कर लोग अपनी जड़ जमीन नहीं छोड़ रहे थे। अपने गाँव-जवार, रोजी-रोजगार, खेत- खलिहान से परे राष्ट्र नाम की कोई संकल्पना उनके मष्तिष्क में नहीं थी, जो था बस यही था। दंगों के समय स्वार्थी- शरारती तत्व इस अवसर की ताक में रहते हैं कि अपने हित कैसे साधे जाएँ। ऐसा ही एक पात्र बशीर निवारण बाबू की हवेली और उनकी बेटी पर नज़र बनाए रखता है। जैसे ही दंगे शुरू होते हैं वह निवारण बाबू की हवेली पर कब्जा कर लेता है, लेकिन तब तक निवारण बाबू और उनकी बेटी विमल भाग जाते हैं। दंगों में ऐसे ही तत्वों की अधिकता रहती है जो जमीन-जोरू की तलाश में रहते हैं। धर्म की नैतिकता-अनैतिकता से इनका कोई संबंध नहीं होता, इन्हें बस जमीन चाहिए। वह अनाज उगाने की जमीन हो

या सृजन का भार लिए कोई युवती । इसी सृजन के माध्यम को रौंदकर धार्मिक कुंठा पूर्ण की जाती है। चौधरी वलूलहक और उनके बेटे का त्याग एवं समझदारी दंगों के थिर होने के पश्चात के समाज के लिए विश्वास पैदा करता है।

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास मिजोरम के सशस्त्र विद्रोह पर आधारित है। 'माउटम' के बाद पनपे असंतोष ने कैसे एक बड़े विद्रोह का रूप धारण कर लिया, यह इस उपन्यास की कथावस्तु है। डोपा गाँव इसके केंद्र में है। उपन्यासकार इस दौरान खुफ़िया विभाग में कार्यरत था। इसी कारण वह विद्रोह की भावना और सरकारी तंत्र के इससे निपटने के तरीकों की तहों तक पहुँचने में सक्षम हो पाया है। लेखक की औपन्यासिक ईमानदारी की तुलना महाश्वेता देवी से करते हुए वीर भारत तलवार लिखते हैं कि- "श्रीप्रकाश मिश्र का यह उपन्यास बहुप्रचारित बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी के 'आदिवासी प्रेम' को दर्शाने वाले साहित्य से कहीं ज्यादा गहरा और सच्चा है।"[vii] वीर भारत तलवार की इस टिप्पणी में ईमानदारी प्रतीत होती है क्योंकि उन्होंने इस उपन्यास की प्रशंसा ही नहीं की है, अपितु इसकी खामियों को भी इंगित किया है। वे इसकी तुलना गोपीनाथ महंती के उपन्यासों से करते हुए इसे कला और जीवन दृष्टि के स्तर पर कमतर बताते हैं। स्त्री सौंदर्य बोध के स्तर पर लेखक पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित दिखाई देता है। लेकिन यहाँ विद्रोह और मिजो जनजीवन को ईमानदारी के साथ व्यक्त करने का प्रयास किया गया है, जो प्रशंसनीय है। लेखक विद्रोहियों के स्वप्न- जिजीविषा और सरकारी दमन की कहानी कहते हुए इसे बिना किसी आदर्शवादी हल के समाप्त करता है।

'उस रात की सुबह' अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित तुम्बम रीबा का महत्वपूर्ण उपन्यास, जिसका प्रकाशन 2018 ई. में हुआ। उपन्यास की प्रतिनिधि पात्र यापी है। यापी की बुआ की मृत्यु के पश्चात बुआ की जगह इसे ब्याह कर जाना था। इस घटना के इर्द-गिर्द कथा घूमती है। वधू मूल्य की प्रचलित परंपरा के कारण यापी का जीवन अंधकारमय होने की स्थिति में था। अपनी रचना के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लेखिका लिखती है कि- "मेरी यह रचना महज रचना नहीं बल्कि एक प्रयास है समाज के चेहरे पर पड़ी उस नकाब को उतार फेंकने की जो सदियों से नारी के प्रति पूर्वाग्रह सामाजिक पक्षपात भरी व्यवस्था से बनी हुई पुराने घिसी-पिटी ढकोसलों भरी गलत आस्थाओं को सामाजिक नियम एवं पारंपरिक रीति-रिवाजों का हवाला देकर स्त्रियों पर डालते हुए उन्हें प्रताड़ित करने वालों के खिलाफ।"[viii] अपने इस उद्देश्य में लेखिका सफल है। उपन्यास में पंक्ति-दर-पंक्ति स्त्री दुर्दशा की कथा कही गई है। सभी स्त्री पात्र पारंपरिक मूल्यों की मार झेलते हुए कराहती दिखाई देती हैं। इस कराह में मौन है, स्वीकार है, अगर कुछ नहीं है तो वह है प्रतिरोध। इन मूल्यों के प्रति प्रतिरोध तामार और काताम नामक दो पुरुष पात्र दर्ज करवाते हैं। इन दोनों पात्रों के प्रतिरोध से यह बात स्पष्ट होती है कि शिक्षा के माध्यम से ही रूढ़िवादी परंपराओं से मुक्त हुआ जा सकता है। उपन्यास में इन मूल्यों के प्रति स्त्री पात्र अपना विरोध दर्ज करवातीं तो उपन्यास अपने उद्देश्य में और अधिक सफल होता। बीच-बीच

में लेखिका स्वयं अपनी बात कहने के लिए उपस्थित होती है, जिससे कथा रस में बाधा उत्पन्न होती है। यही बात यदि वह अपने पात्रों से कहलवाती तो उपन्यास की रोचकता और अधिक बढ़ जाती।

'जंगली फूल' जोराम यालाम नाबाम द्वारा रचित उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2019 ई. में हुआ। यह अरुणाचल प्रदेश की निशी जनजाति पर केंद्रित है। तानी वंश के आदि पुरूष आबोतानी के चरित्र को केंद्र में रखकर कथानक को गढ़ा गया है। उपन्यास के संदर्भ में स्वयं लेखिका का कथन है कि "तानी को केंद्र में रखा जरूर है, लेकिन कहानी काल्पनिक है।"[ix] ऐसा कहकर लेखिका कथा की प्रामाणिकता से छूट प्राप्त कर लेती है। आबोतानी वंश वृद्धि हेतु विवाह करता है तथा धान के बीज लाने और खेती सीखने के लिए लंबी यात्रा करता है ताकि उसका कबीला समृद्ध हो सके। वह अपने इस उद्देश्य में सफल होता है। साथ ही वह धान के बीज अन्य कबीलों में भी वितरित करता है जिससे कि मानव जीवन से भुखमरी को नष्ट किया जा सके।

'रूपतिल्ली की कथा' मेघालय राज्य की खासी संस्कृति और राजनीतिक संघर्ष पर केंद्रित है। पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित लेखक का यह दूसरा उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2019 ई. में हुआ। इस उपन्यास की विषय वस्तु के संदर्भ में आमुख के अंतर्गत उपन्यासकार ने लिखा है कि- "इस उपन्यास का नायक संस्कृति है-एक जाति की एक विशेष कालखंड की संस्कृति, जब उस जाति को अंग्रेजों द्वारा गुलाम बनाया जा रहा था। वह कालखंड 18 वीं सदी के कुछ अंतिम और 19वीं सदी के कुछ आरंभिक दशकों का है।"[x] इसके अधिकांश चरित्रों के क्रियाकलापों एवं सोच विचार में संस्कृति बसी हुई है, सभी संस्कृति से चालित हैं। किसी भी रचना की प्रारंभिक पंक्तियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। वे लेखक के मंतव्य को आरम्भ में ही स्पष्ट कर देती हैं। आरम्भ में ही लेखक ने प्रकृति का वर्णन करते हुए राफताब को द्वंद्व का शिकार दिखाया है। उसका द्वंद्व भी संस्कृति प्रसूत है। उपन्यास के कथानक का जो काल है उस समय तक मेघालय की विभिन्न पहाड़ियों पर ईसाई और हिंदू धर्म प्रचारक आने लगे थे। ब्रिटिश सरकार का समर्थन प्राप्त होने के कारण ईसाई धर्म प्रचारकों को अधिक सफलता प्राप्त हुई। उपन्यास का उत्तरार्द्ध राजनीतिक संघर्ष का रंग लिए हुए है। उ तिरोत सिंह और रिंजा खासी पहाड़ियों को अंग्रेजी प्रभुत्व से बचाने के लिए संघर्ष करते हुए दिखाए गए हैं। जब वे दोनों तमाम खासी राज्यों को संगठित करने में लगे थे, उन्हें आसन्न युद्ध और पराजय दोनों की संभावना दीख रही थी। लेकिन अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष जरूरी है, वही संघर्ष पहचान स्थापित करता है। इसी संघर्ष की तैयारी दोनों कर रहे थे। उ तिरोत सिंह की गिरफ्तारी के साथ संघर्ष समाप्त होता है। डिंगयेई पेड़ के कटकर गिरने की क्रिया के माध्यम से खासी प्रतिरोध को प्रतीकात्मक ढंग से समाप्त होते दिखाया गया है। खासी शब्दों के प्रयोग से पाठकीय प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है, लेकिन यह स्थानीय रंग भरने का भी काम करता है। इससे उपन्यास की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। एक बात अवश्य खटकती है कि इसमें चारित्रिक भाषा नहीं उभर पाती है। निरंतर लेखक और उसके संस्कारों की भाषा बहती रहती है। इसी कारण यह कथानक की दृष्टि से बेजोड़ होते हुए भी कला के चरमोत्कर्ष को नहीं छू पाती है।

उपर्युक्त वर्णित उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यासकारों ने पूर्वोत्तर को औपन्यासिक स्वर देने में पूर्ण ईमानदारी बरतने का प्रयास किया है। पूर्वोत्तर के संदर्भ में उपन्यासकारों की दो श्रेणियाँ हैं- प्रथम पूर्वोत्तर के बाहर के उपन्यासकार और दूसरे स्थानीय उपन्यासकार। प्रथम श्रेणी के उपन्यासकारों का संस्कार भिन्न होने के कारण तमाम ईमानदारी बरतने के बाद भी वे कहीं-कही असंतुलित होते दीखते हैं। दूसरी श्रेणी के उपन्यासकारों के संबंध में यह लागू नहीं होता है। इन दोनों श्रेणियों के रचनाकारो में जो दूसरा प्रमुख अंतर दिखाई देता है, वह विषय चयन का है। बाह्य उपन्यासकारों ने सामान्यतः राजनीतिक समस्याओं को विषय के रूप में चुना है। संस्कृति की कथा कहने के संदर्भ में भी वह राजनीतिक विषयों से नहीं बच पाता है। वहीं स्थानीय उपन्यासकारों ने प्राय: सामाजिक समस्याओं को केंद्र में रखा है। ये दोनों अंतर संस्कार और रूचि केंद्रित हैं। जैसे-जैसे स्थानीय रचनाकारों की उपस्थिति इस क्षेत्र में बढ़ेगी, सांस्कृतिक-सामाजिक वैशिष्ट्य के स्वर को पूर्णता प्राप्त होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[i] सत्यार्थी, देवेंद्र.(1992). *ब्रह्मपुत्र.* दिल्ली: ज्ञान गंगा. पृ. 195

[2] ठाकुर, बलभद्र.(1958). *मुक्तावती.* इलाहाबाद: हिन्दी भवन. पृ. झ

[3] वही, पृ. 40

[4] भिक्खु, कृष्ण चन्द्र शर्मा.(1978). *रक्तयात्रा.* नयी दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस. पृ. 207-208

[5] वर्मा, नवारुण.(1983). *जय आइ असम,* इलाहाबाद: स्मृति प्रकाशन. पृ. 25

[6]दुबे, डॉ महेन्द्र नाथ. (1999). *मुक्ति.* नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 21

[7] तलवार, वीर भारत. (2012). *झारखंड के आदिवासियों के बीच.* नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ 455

[8] लीली, तुम्बम रीबा. (2018). *उस रात की सुबह.* नई दिल्ली: पृथ्वी प्रकाशन. पृष्ठ 7

[9] नाबाम, जोराम यालाम. (2018). *जंगली फूल.* नई दिल्ली: यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स. प्रस्तावना. पृष्ठ 5

[10] मिश्र, श्रीप्रकाश. (2019). *रूपतिल्ली की कथा.* इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. आमुख पृष्ठ 7

*(**लेखकीय परिचय:** अरविंद कुमार यादव पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय के हिंदी विभाग में शोधरत हैं।)*

अरुणाचल प्रदेश का आदिवासी समाज और स्त्री-जीवन

अभिषेक कुमार यादव एवं चेबी मिहु

अरुणाचल प्रदेश, भारत का सीमांत प्रदेश है। यहाँ की मूल आबादी आदिवासी समुदायों की है। ये आदिवासी समाज अलग-अलग सांस्कृतिक परंपराओं को मानने वाले हैं। इनमें समानताएं भी हैं और असमानताएं भी। यह प्रदेश भौगोलिक दृष्टि से उत्तर-पूर्व का सबसे बड़ा राज्य है, किंतु इसकी आबादी महज तेरह से चौदह लाख ही है। छब्बीस से ज्यादा जनजातीय समूहों और सौ से ज्यादा उपजनजातीय समूहों के रहवास का यह क्षेत्र 1962 में हुए भारत-चीन युद्ध के बाद हमेशा के लिए बदल गया। आज हम जिस अरुणाचल प्रदेश को देखते हैं, उसके इस स्वरूप का प्रस्थान बिंदु यह युद्ध ही है। इसके पहले राजनयिक तौर पर यह एक भौगोलिक बफर क्षेत्र की तरह था तथा आज़ादी के बाद प्रसिद्ध मानवशास्त्री वेरियर एल्विन के जनजातीय समाजों से संबंधित मान्यताओं और सिद्धांतों को इस क्षेत्र के लिए व्यवहृत किया गया।[1] हालांकि 1962 के युद्ध के बाद राजकीय नीतियों में बहुत परिवर्तन किया गया। इसके दूरगामी और बहुआयामी परिणाम हुए। इन्हीं परिणामों में से एक परिणाम अरुणाचल प्रदेश में हिंदी का विकास है। आज यहाँ संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रचलन सबसे लोकप्रिय है। पिछले 15-20 वर्षों से यहाँ हिंदी भाषा में साहित्य सृजन भी शुरू हो गया है। अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय लेखकों द्वारा हिंदी भाषा में प्रचुर साहित्य लेखन किया जा रहा है। हिंदी साहित्य की परिधि और प्रवृत्तियों के विकास के संदर्भ से देखें तो यह बहुत ही उत्साहवर्धक है। इन्हीं लेखकों में एक प्रमुख नाम जोराम यालाम नाबाम का है, जिनका अब तक एक कहानी-संग्रह, एक संस्मरण तथा एक उपन्यास प्रकाशित हो चुका है। उनके कहानी-संग्रह 'साक्षी है पीपल' की अधिकांश कहानियों का केन्द्र अरुणाचल प्रदेश का स्त्री जीवन ही है। इस लेख में उनकी कहानियों को आधार बनाकर अरुणाचल प्रदेश के तानी समूह की जनजातियों की स्त्रियों के जीवन को समझने की कोशिश की गई है।

अरुणाचल प्रदेश में रहने वाली जनजातियों की सामाजिक संरचना मूलतः पितृसत्तात्मक है। यौन-हिंसा और बलात्कार जैसी घटनाएं भी यहाँ होती रहती हैं। जोराम यालाम की कहानियाँ इसकी बखूबी शिनाख्त करती हैं। इन कहानियों की अधिकांश स्त्री-पात्रों के साथ यौन हिंसा की घटनाएँ होती हैं और बहुत बार उन्हें न्याय नहीं मिल पाता है। स्त्री-पात्रों के साथ हुई बलात्कार की घटनाओं में भी स्त्रियों को ही दोषी ठहरा दिया जाता है। यहाँ हमें बलात्कार के संदर्भ में कुछ आधारभूत बातों को जानना जरूरी है। शब्दकोशों में बलात्कार का अर्थ दिया गया है- 1.स्त्री की इच्छा के विरुद्ध ज़बरदस्ती किया जाने वाला संभोग। 2. धोखा, भय या आतंक के बल पर शारीरिक संबंध स्थापित करना; शीलभंग; सतीत्वभंग आदि।[2] ये सारे शब्द 'जोर जबरदस्ती' पर बल देते हैं, जो स्त्री यौन-हिंसा से ही संबंधित है, जबकि कई बार यौन-हिंसा का शिकार स्त्री ही नहीं, बल्कि पुरुष भी होते हैं। इसीलिए नारीवादियों की माँग को ध्यान में रखते हुए क़ानून की शब्दावली से 'बलात्कार' नामक शब्द को हटाकर उसकी जगह 'यौन–आपराधिक आचरण' जैसे शब्द का प्रयोग किया

जाना चाहिए।[3] इससे लाभ यह होगा कि इसके अंतर्गत हर तरह की यौन- हिंसा को ध्यान में रखते हुए, अपराध की प्रवृत्ति के आधार पर अपराधी को दंड दिया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त यौन-हिंसा के अंतर्गत उन सभी दुर्व्यवहारों को भी शामिल किया जाना चाहिए, जो स्त्री की शरीर से सीधे संबंध नहीं रखते हैं किंतु उनका लक्ष्य स्त्री की अवहेलना और हिंसा ही है। इसका एक उदाहरण भीड़ में किसी पुरुष द्वारा स्त्री को देखकर अपने गुप्तांग को छूना जैसी घटनाएँ हैं।

कहा जाता है कि मौन में बहुत ताकत होती है, लेकिन सच यह है कि यह ताकत उतनी नहीं होती जितनी शब्दों में होती है। स्त्रियाँ आमतौर पर अपने विरुद्ध होने वाली हिंसा के प्रति मौन रह जाती हैं, किंतु यदि वे बोलें तो हमारे सामने बेहतर परिणाम आ सकते हैं। हालांकि स्त्री वर्ग के लिए व्यावहारिक जीवन में अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के खिलाफ़ आवाज उठाना इतना सहज नहीं होता है। अन्याय के खिलाफ़ आवाज उठाने की हिम्मत वहाँ होती है, जहाँ अन्य लोगों से सहयोग मिलने की उम्मीद हो लेकिन स्त्री की स्थिति कुछ इस तरह है कि बहुत सारे मामलों में स्त्री ही स्त्री के खिलाफ़ खड़ी दिखाई देती है। बहुत बार पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़िवादी विचारधारा के रक्षक के रूप में भी औरतें दिखाई देती हैं। यौन-हिंसा के संबंध में स्त्री की आवाज घर के भीतर ही दबा दी जाती है क्योंकि पित्तृसत्तात्मक समाज में 'सामाजिक इज्जत' अपराध करने वाले की नहीं जाती है। इसके विपरीत पीड़ित भी महिला होती है, दोषी भी उसी को ठहराया जाता है और 'इज्जत' भी उसी की ही जाती है। यौन हिंसा के संबंध में स्त्री की यह दुर्दशा आज की ही कहानी नहीं है। दुनिया के ऐसे कई मिथक हैं, जहाँ स्त्री के साथ बलात्कार होने पर स्त्री को ही सज़ा दी गई है। हिन्दू मिथकों के अनुसार इंद्र ने महर्षि गौतम का वेश धारण कर उनकी पत्नी अहिल्या के साथ शारीरिक संबंध बनाया था। यह एक यौन हिंसा थी। लेकिन इसकी सजा ऋषि ने इंद्र को ही नहीं, अहिल्या को भी दी। जबकि अहिल्या के साथ भी धोखा हुआ था, वह ठगी गई थी । यहूदी धर्म में भी जीउस, स्वैन का रूप धारण कर लेडा के साथ शारीरिक संबंध बनाता है।[4] किंतु इस अपराध को मिथकों में यौन हिंसा नहीं कहा गया।

कई आदिवासी समाज में भी स्त्रियों के विरुद्ध यौन हिंसा संरचनात्मक रूप से मौजूद है। अक्सर आदिवासी समाजों में लिंग भेद के विषय में चर्चा करते हुए कहा जाता है कि आदिवासी समाज सरल, सहज और समानतापूर्ण समाज होते हैं। दूर से देखने पर बात जितनी सरल दिखती है, उतनी है नहीं। सरलीकरण बनाम उलझे यथार्थ की एक बानगी हम इस उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं। आदिवासी समाजों में प्रचलित 'डायन प्रथा' के बारे में प्रसिद्ध लेखिका रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "गैर-आदिवासियों में पहले से ही संपत्ति की भावना थी, लेकिन आदिवासियों में तो इस प्रथा को अंग्रेजी हुकूमत लेकर आई। सूदखोरी और ज़मीन के व्यक्तिगत पट्टे, ये दो अभिशाप भारत में अंग्रेजों ने 'मौन-संस्कृति' की इस आदिवासी जमात को दिए। तब से औरत की हिस्सेदारी या अधिकार इन क्षेत्रों में समाप्त हो गए, क्योंकि ये पट्टे मर्दों के नाम से दिए जाते थे, इसलिए काल-क्रम में आदिवासी पुरुष भी यह समझ बैठे कि यह जमीन उनकी ही है। इस तरह से जमीन पर सामुदायिक स्वामित्व का मुद्दा कमजोर हो गया और व्यक्तिगत संपत्ति की भावना प्रबल हो गई। इन सद्य-प्राप्त व्यक्तिगत जमीनों में औरत की हिस्सेदारी उन्हें खटकने लगी।[5] इस तर्क की एक भौगोलिक सीमा है।

यह भारत के उन्हीं आदिवासी इलाकों के संदर्भ में कही जा सकती है, जिन पर अंग्रेजों का सीधा शासन था। दूसरी बात यह है कि इस तर्क के आधार पर सोचें तो यह लगेगा कि पारंपरिक तौर पर आदिवासी समाजों की महिलाओं का जमीन और सम्पत्तियों में हिस्सा होता था, लेकिन अंग्रेजों के आने के बाद यह बदल गया जबकि सच इससे ज्यादा उलझा हुआ है। इन जनजातीय समाजों की मूल संरचना में ही पुरुषों का संपत्ति पर अधिकार माना गया है। आदिवासी समाजों के संदर्भ में सामूहिकता की तथा निजी संपत्ति के न होने की बात बार-बार कही जाती है। प्रश्न यह है कि इस सामूहिक संपत्ति की अवधारणा में स्त्रियाँ हिस्सेदार हैं या नहीं? यह समझना ज़रूरी है। यदि ध्यान से देखें तो यह पता चलता है कि संपत्ति पर अधिकार और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण के मामले यह सामूहिकता केवल पुरुषों की ही है। निजी संपत्ति की आधुनिक अवधारणा जनजातीय समाजों में पारंपरिक रूप से नहीं होती है लेकिन वहाँ निजी संपत्ति बिल्कुल नहीं होती है, यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है। अरुणाचल के जनजातीय समाज में निजी संपत्ति के कारण कई बार बड़े झगड़े होते रहे हैं। यहाँ का समाज भी संपत्तियों पर स्त्रियों के अधिकार को स्वीकार नहीं करता है, इसलिए यहाँ भी स्त्रियों के प्रति यौन हिंसा की घटनाएँ बहुत आम हैं।

अरुणाचल प्रदेश में सामान्य तौर पर इस तरह की हिंसा की ख़बर बाहर नहीं आ पाती है, क्योंकि इसके कारण जनजातीय समाजों के गोत्रों में आपसी संघर्ष बढ़ जाने का डर होता है और इस संघर्ष के कारण कुछ अनहोनी होने से औरत पर ही आरोप लग जाएगा कि उसी के कारण गोत्र के बीच लड़ाई हुई है। इस आदिवासी क्षेत्र की औरतें वैवाहिक बलात्कार की भी शिकार होती हैं। लेकिन इसे कभी अपराध के रूप में नहीं देखा गया बल्कि ऐसे अपराध को पुरुष के पुरुषत्व से जोड़कर देखा गया। अरुणाचल के महिला आयोग के पास 08/11/2002 को एक महिला ने केस दर्ज कराया, जिसमें उसने बताया कि जब वह मात्र पाँच से छह साल की थी, तभी उसके भाई ने पाँच मिथुन के बदले में पचास साल के एक पुरुष के हाथ उसको बेच दिया और जब तक वह ससुराल में रही, तब तक उसके पति ने उसके साथ बलात्कार किया।[6] अमेरिकन इंडियन आदिवासी समाज में 'बुरी स्त्री' के साथ सामूहिक बलात्कार करना अपराध नहीं माना जाता था। 'बुरी स्त्री' का अर्थ था जो विधवा हो, जिस स्त्री पर पुरुष का संरक्षण न हो तथा झगड़ालू स्त्री। ब्राजील में रहने वाले *मुंडुरुकु आदिवासी (Mundurucu Tribe)* समाज में स्त्री को नियंत्रित करने के लिए सामूहिक बलात्कार किया जाता था। खासतौर से उन स्त्रियों का जो कर्तव्य परायण न हों, जो पति के अधीन न हों और पति के प्रति वफादार न हों।[7]

यालाम के कहानी- संग्रह 'साक्षी है पीपल' की एक कहानी है- 'उसका नाम यापी था'। यह कहानी अरुणाचल के न्यीशी समाज में स्त्री की स्थिति को केंद्र में रखकर लिखी गई है। न्यीशी समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है। कहानी की मुख्य स्त्री पात्र का नाम यापी है। एक पितृसत्तात्मक जनजातीय समाज में स्त्री में जिन- जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है, वे सब गुण यापी में हैं। लेखिका यापी के चरित्र का वर्णन कुछ इस तरह करती है- "खेतों में फावड़ा चलाना हो या धान रोपना, किसी के यहाँ पूजा में औरतों का हाथ बँटाना हो या घर का कोई काम-यापी सब में हिरनी सी फुर्ती रखती थी। खाली समय में अपने भाई बहनों के लिए स्वेटर बुनना उसे बहुत पसंद था।[8]

यापी का विवाह उसके जन्म से पहले ही तय हो गया था। "जब वह माँ के गर्भ में थी, तभी बात पक्की हो गई थी कि लड़की हुई तो तारो के साथ शादी होगी। तारो उससे तीन साल बड़ा था। जन्म होते ही तारो के माँ-बाप ने अपनी शर्त के अनुसार यापी के माँ-बाप के पास पाँच मिथुन[9], कुछ सूखा मीट, चार टोकरी आपोङ्ग[10] तथा दो दाव पहुंचा दिये।"[11] अरुणाचल प्रदेश के तानी समुदाय की जनजातियों की विवाह-परंपरा में लड़के, लड़की का 'मूल्य' देते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई स्त्री ससुराल में होने वाले अत्याचारों से तंग आकर 'मूल्य' लौटाना चाहे लेकिन गरीबी के कारण असमर्थ हो तो वह इन अत्याचारों को सहने के लिए मजबूर है। इसीलिए घर से ही माँ अपनी बेटी को यही शिक्षा देकर ससुराल भेजती है कि पति जैसा भी हो, अब वही तुम्हारा रक्षक है। ऐसी स्थिति में लड़की न चाहते हुए भी अत्याचार सहती रहती है। पितृसत्तात्मक समाजों में पति द्वारा बलात्कार करने को कभी भी अपराध नहीं माना गया। गैर जनजातीय समाजों में भी कुछ वर्ष पहले ही पति द्वारा यौन हिंसा को बलात्कार माना गया है। कहानी में यापी के साथ उसका पति तारो जबरदस्ती शारीरिक संबंध बनाता है। यापी चिल्लाती रही, लेकिन उसे बचाने वाला कोई नहीं था। लेखिका लिखती हैं कि- "वह चिल्लाती रही, पर कोई सुनने वाला भी नहीं था। न्यीशी लोगों के घर इतनी दूर-दूर होते हैं कि आसानी से किसी को भी किसी की आवाज सुनाई नहीं देती। वह लुट चुकी थी। उसके कपड़े तार-तार हो गए थे। वह उसका होने वाला पति था। उसका चिल्लाना कोई सुन भी लेता तो कुछ भी नहीं कर सकता था।"[12] लोग सुनकर भी अनसुना इसलिए कर देते क्योंकि तारो, यापी का पति है। तारो उसके साथ जबरदस्ती करे, उसे काटकर फेंक दे, इससे लोगों को कुछ फर्क नहीं पड़ता। इतना सब कुछ घटित होने पर भी यापी किसी को कुछ नहीं बताती है। उसे 'दु:खी होना चाहिए भी या नहीं, यापी नहीं जानती थी।'[13] क्योंकि उसके समाज में पति द्वारा जबरदस्ती शारीरिक संबंध बनाना यौन-हिंसा नहीं है। यापी अगर किसी को बता भी देती तो लोग यही कहते कि तारो उसका पति है और पति को अधिकार है पत्नी के साथ शारीरिक संबंध बनाने का। लोग बलात्कार और संभोग को एक ही मानते हैं। इसलिए आदिवासी समाज में बलात्कार की आवधारणा नहीं है।

बलात्कार की एक पीड़िता इरीन, बलात्कार और संभोग के अंतर को स्पष्ट करते हुए कहती हैं- "Rape is not sex. If you hit someone on the head with a rolling pin, it's not cooking."[14] बलात्कार और संभोग के इस अंतर को पति हो या चाहे कोई भी हो, इसे समझने की जरूरत है। तारो के लिए यापी के साथ जबरदस्ती यौन संबंध बनाना समाज की निगाह में यौन-हिंसा नहीं है, क्योंकि जिस समाज में वह रहता है वहाँ बलात्कार की अवधारणा ही नहीं है। वहाँ अपनी पत्नी के साथ जोर- जबरदस्ती करना पुरुषत्व का प्रतीक है।

जब भी औरतों के साथ दुष्कर्म होता है तो लोगों को यह कहते हुए सुना जाता है कि औरतों को घर में या सुरक्षित स्थान पर रहना चाहिए था। कनार्टक राज्य मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष ने तो एक सार्वजनिक सभा में यहाँ तक कह दिया था कि "हाँ, पुरुष बुरे होते हैं..लेकिन महिलाओं से रात के समय बाहर निकलने के लिए किसने कहा है..महिलाओं को रात में कहीं बाहर नहीं निकलना चाहिए और अगर वे ऐसा करती हैं तो फिर उनकी इस शिकायत का कोई मतलब नहीं है कि पुरुषों ने उनके साथ छेड़छाड़ की।"[15]

हालांकि वास्तविकता तो यह है कि स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है। नेशनल क्राइम ब्यूरो 2020 के आंकड़े के मुताबिक 100 में से कुल 95 % यौन हिंसा के आरोपी पीड़िता के करीबी ही हैं।[16] यापी पहले अपने पति तारो के द्वारा बलत्कृत होती है। बाद में यापी का बचपन का दोस्त जामजा उसके साथ बलात्कार करता है। जामजा को यापी पसंद भी करती है। उसके साथ जंगल भी जाती है। आँखे बंद करके किसी पर विश्वास करना उसकी सबसे बड़ी ग़लती होती है। जामजा, यापी के इसी विश्वास का फ़ायदा उठाता है। यापी के साथ फिर दुष्कर्म होता है। इस बार भी यापी बेबस है। यापी जोर से रो भी नहीं पाती है। यापी सोचती है- "जोर से रोती तो कोई सुन सकता था, फिर तो आफत ही हो जाती। क्यों वह अकेली गई उसके साथ जंगल में।"[17] 'औरत होने की सज़ा' किताब में अरविन्द जैन ने मथुरा बलात्कार मामले में लिखा है कि – "मथुरा बलात्कार मामले में तो हद हो गई जिसमें उसके (मथुरा) साथ थाने में बलात्कार हुआ और सर्वोच्च न्यायलय ने अपने फैसले में कहा कि मथुरा एक बदचलन लड़की थी जो अपनी मर्जी से पुलिसवालों के पास आई थी।"[18] यापी की भी यही स्थिति थी। यदि वह बताती कि जामजा ने उसके साथ दुष्कर्म किया है तो समाज वही कहता जैसा मथुरा के संबंध में कानून के रखवाले सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था। यदि अपराधी के माथे पर लिखा होता कि वह दुष्कर्म करने वाला है तो औरतें अकेली अपराधी के साथ कहीं नहीं जातीं, किंतु ऐसा होता तो नहीं है।

समाज की दृष्टि में रात को घर से बाहर जाने वाली लड़की, पार्टी करने वाली लड़की, छोटे कपड़े पहनने वाली लड़कियाँ एवं जो किसी के साथ पहले से ही शारीरिक संबंध बना चुकी हो ,ऐसी लड़कियाँ उतनी ही दोषी हैं, जितना कि उसके साथ यौन हिंसा करने वाला अपराधी। गरीब परिवार से होने के कारण यापी, तारो को कन्या का मूल्य नहीं लौटा सकती थी। इसलिए जामजा द्वारा बलत्कृत होने के बाद यापी तारो के घर जाती है और वहाँ रहते हुए जानबूझकर गाँव के कई मर्दों से यौन-संबंध बनाती है। इसके बाद तारो के परिवार वालों ने उसे घर से निकाल दिया। तारो के घर से मुक्ति पाने के लिए ही वह ऐसा करती है। संकट की इस अवस्था में वह कुछ रोजगार की उम्मीद में शहर में रहने वाली अपनी दोस्त आमी के घर जाती है। आमी के पति को पता था कि यापी ने तारो के गाँव में रहते हुए कई मर्दों के साथ यौन-संबंध बनाया है। वह भी उसके साथ जबरदस्ती करता है और जब वह प्रतिकार करती है तो वह कहता है कि- "तुम्हारे जीवन में मैं अकेला मर्द थोड़े ही हूँ। तुम तो इसमें माहिर हो।"[19]

सच यह था कि कन्या का मूल्य लौटाने में असमर्थ होने के कारण यापी को ऐसा करना पड़ा था ताकि वह तारो से छुटकारा पा सके और वह यापी को स्वंय त्याग दे। लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं था कि वह हर किसी से यौन-संबंध बनाना चाहती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई भी आकर उसके साथ जबरदस्ती करे। लेकिन समाज में स्त्री की किसी ग़लती के लिए कोई माफी नहीं है। उसे सम्मानित जीवन जीने का मौका तक नहीं दिया जाता है। उसे समाज में हमेशा घृणा का सामना करना पड़ता है। यदि किसी के साथ शादी हो जाती है तो समाज माफ़ कर भी देता है। लेकिन अविवाहित स्त्री के लिए कोई माफी नहीं है। यहाँ तक कि ऐसी स्त्रियां तो दूसरी औरतों की आँखों की किरकिरी बन जाती है। आमी के पति जैसे कई पुरुष हैं जो औरतों के साथ जबरदस्ती करने के बाद औरत पर ही चरित्रहीन होने का आरोप लगा देते हैं। दूसरी ओर कई बलात्कारी अपने

अपराध को जायज़ बताते हुए कहते हैं कि उसने स्त्री के साथ जो भी किया उसे सबक सिखाने के लिए किया है क्योंकि वह अकेली पुरुष मित्र के साथ रात को बाहर घूम रही थी। समाज, औरतों पर हो रहे अपराध को न रोक कर, पीड़िता को ही घर से बाहर न निकलने की हिदायत देता है। सोहेला अब्दुलाली अपनी किताब में लिखती हैं कि- चार मर्दों ने उसके साथ बलात्कार इसलिए किया, क्योंकि वे उसे सबक सिखाना चाहते थे। लेखिका की ग़लती बस इतनी थी कि वह उस रात अपने एक पुरुष दोस्त के साथ घूम रही थी। बलात्कारी अपने अपराध को जाय़ज ठहराते हुए सोहेला अब्दुलाली से कहता है कि जो भी उसके साथ हो रहा है वह उसी की भलाई के लिए हो रहा है।[20] यदि बलात्कार होने की वजह छोटे कपड़े पहनना, रात को घर से बाहर निकलना, पहले से किसी के साथ शारीरिक संबंध बनाना, वेश्या होना है, तो घर में बैठी पाँच-छह साल की लड़की के साथ जो दुष्कर्म की घटनाएँ होती हैं, उसमें भी क्या उस बच्ची की ग़लती है? महाराष्ट्र में 21 दिसम्बर,1985 को पिता ने सात साल की बेटी के साथ बलात्कार किया। किंतु पिता को बम्बई के उच्च न्यायालय ने उसकी क्षणिक भूल, पत्नी का मर जाना, अनपढ़ होना जैसे कई अजीब-ओ-गरीब कारण बताते हुए आजीवन कारावास की सज़ा न देकर 10 साल की जेल दी।[21]

न्यूयॉर्क में रहने वाली ऑड्रे नामक एक महिला के साथ यौन हिंसा हुई। जब वह कोर्ट गई तो न्यायाधीश ने अपराधियों को यह कहकर छोड़ दिया कि ऑड्रे बलात्कार होने से पहले भी शारीरिक संबंध बनाती आयी है।[22] इसका अर्थ यह हुआ कि जो स्त्री शारीरिक संबंध बना चुकी हो, उसके साथ बलात्कार हो ही नहीं सकता। इसी तरह यदि इस कहानी में भी यापी अपनी सहेली आमी को बता भी देती कि उसके पति ने उसके साथ बलात्कार किया है और वह माँ बनने वाली है तब भी आमी विश्वास नहीं करती। इसके विपरीत यापी पर ही उसके पति को रिझाने का आरोप लग जाता क्योंकि समाज की दृष्टि में यापी पति द्वारा छोड़ी हुई एक चरित्रहीन औरत है। आमी का पति कहता भी है कि वह बच्चे का गर्भपात करा ले वरना वह आमी से कह देगा कि यापी ने उसके साथ जबरदस्ती किया था। अपने लिए वह 'कह देगा कि मर्द आदमी है, बस बहक गया था।[23] मर्द आदमी है, बहक जाता है, इस तरह का विचार ही तो स्त्री के प्रति यौन-हिंसा को बढ़ावा देता है। जबकि इसके विपरीत पुरुष को यह सिखाया जाना चाहिए कि वह अपनी क्षणिक उत्तेजना को नियंत्रित करना सीखे।

जब किसी को चोट लगती है तो उसका इलाज किया जाता है या करवाया जाता है। किंतु यौन-उत्पीड़न से पीड़ित स्त्री के साथ ऐसा नहीं होता है। समाज से लेकर न्यायालय तक स्त्री पर ही सवाल करते हैं। ये सारे सवाल घाव पर नमक छिड़कने का काम करते हैं। इसीलिए यह घाव जल्दी ठीक नहीं होता है और पीड़िता स्वयं को ही दोषी मानने लगती है। यही कारण है कि कई बार यौन-हिंसा से पीड़ित औरतें आत्महत्या कर लेती हैं। इस तरह की आत्महत्याएं असल में सामाजिक और सामूहिक रूप की गई हत्याएं हैं। इस कहानी के अंत में भी यापी नदी में कूदकर जान दे देती है। कहानी के अंतिम पृष्ठ पर लेखिका यापी के मरने की बात का कुछ इस तरह वर्णन करती है- 'सुबह नदी के किनारे लोगों का जमावड़ा हो गया। पुलिस अपना काम कर रही थी। दूसरे दिन अखबार में छपा- बिन पति के गर्भवती महिला ने ब्रिज से कूदकर अपनी जान दे दी।[24]

पितृसत्तात्मक समाज ने यापी को मरने पर विवश किया था। यदि समाज यौन हिंसा में पीड़ित की जगह अपराधी को ही दोषी मानता, तो यापी जैसी कई लड़कियाँ आत्महत्या नहीं करतीं। यापी माँ बनने वाली थी। इसमें यापी की कोई ग़लती नहीं थी, न उसके अजन्में बच्चे की। अपराधी तो आमी का पति था। किंतु सज़ा यापी को और उसके पेट में पल रहे बच्चे को मिली। अर्थशास्त्र में पर्दे के पीछे से समाज को संचालित करने वाली पूंजी की ताकतों के लिए एक शब्द प्रचलित है- 'अदृश्य हाथ'। हमारे समाज में यह अदृश्य हाथ है 'पितृसत्तात्मक विचारधारा और व्यवस्था' का। यह अधिकतर लोगों को दिखाई नहीं देता है। जब यापी जैसी कोई स्त्री मरती है, तो देखने वाले को लगता है कि उसने आत्महत्या की है। वास्तव में पितृसत्ता का अदृश्य हाथ ही उसके गले में फाँसी डालता है, उसे नदी में ढकेल देता है, उसे ज़हर खिला देता है। पीछे छुपे इस अदृश्य हाथ को कोई नहीं देख सकता।

यापी के साथ तारो इसलिए बलात्कार करता है क्योंकि वह उसकी पत्नी थी। पति होने का अधिकार उसे प्राप्त था और समाज की नजरों में पति द्वारा पत्नी के साथ जबरदस्ती करना अपराध नहीं था। दूसरी ओर जामजा, यापी के साथ बलात्कार इसलिए करता है क्योंकि यापी छोड़ी हुई स्त्री थी। यापी, जामजा को चाहने लगी थी तो जामजा को लगा कि यापी संभोग के लिए सहमत है। आमी का पति, यापी के साथ जबरदस्ती इसलिए करता है क्योंकि वह ऐसा मानता है कि यामी पहले भी कई मर्दों के साथ सो चुकी है। वह एक चरित्रहीन औरत है। इसलिए ऐसी स्त्री के साथ जबरदस्ती करना उसे अपराध नहीं लगा। तीनों ही स्थितियों में अपराधी की मानसिकता के पीछे एक संरचनागत पितृसत्तात्मक व्यवस्था और प्रशिक्षण काम कर रहा है जबकि तीनों ही स्थितियों में पीड़िता एक बेहतर जीवन की तलाश में होती हैं, लेकिन उसके हिस्से में अन्याय और अत्याचार ही आता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] वेरियर एल्विन ने तत्कालीन 'नेफ़ा' (अब अरुणाचल प्रदेश) के जनजातीय जीवन को आधार बनाकर एक किताब लिखी थी जिसका नाम है-

'ए फिलोसोफी फॉर नेफ़ा'। इस किताब में उन्होंने आदिवासियों के प्रति अपने नजरिए और दर्शन को अभिव्यक्त किया है।

[2] हिन्दी टू डिक्शनरी, https://www.hindi2dictionary.com

[3] मेनन, निवेदिता. (2021). नारीवादी निगाह से. (अनुवादक: नरेश गोस्वामी) नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ- 112

[4] Susan Brownmiller, Against Our Will : Men, Women and Rape, The Random House Publishing Group, First edition-1993,

page-284-285

[5] गुप्ता, रमणिका. (2012). स्त्री मुक्ति: संघर्ष और इतिहास. नई दिल्ली: सामयिक पेपरबैक्स. पृष्ठ- 152-153

[6] Miss Yapi Maling, M.Phil. Thesis, 2015-2016, Arunachal Pradesh State Commission for Women: A Study of its

Workings, Organisational Structure and Powers, Dept. Of Political Science, Rajiv Gandhi University, Arunachal Pradesh.

[7] Susan Brownmiller, Against Our Will : Men, Women and Rape, The Random House Publishing Group, First Edition-1993, page-285

[8] नाबाम, जोराम यालाम. (2016). साक्षी है पीपल, नई दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स. पृष्ठ-33

[9] एक पशु जो आकार में गाय या भैंस के बराबर होता है। इसे पालना और इसकी संख्या सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय है। इसे विवाह में लड़के पक्ष

के द्वारा लड़की पक्ष को 'कन्या के मूल्य' के तौर पर दिया जाता रहा है। परंपरागत त्योहारों में इसकी बलि दी जाती है।

[10] स्थानीय शराब जो चावल से बनाई जाती है।

[11] जोराम यालाम, साक्षी है पीपल, अनुज्ञा बुक्स, प्रथम संस्करण-2019, पृष्ठ-45

[12] वही, पृष्ठ-35

[13] वही, पृष्ठ-36

[14] Sohaila Abdulali, What We Talk About When We Talk About Rape, Penguin Random House India Pvt. Ltd., 2018, Page-84

[15] मेनन, निवेदिता. (2021). नारीवादी निगाह से. (अनुवादक: नरेश गोस्वामी) नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ- 110

[16] 8.3% dip in crimes against women in 2020: NCRB report | Latest News India - Hindustan Times Dated 16 September 2021.

[17] नाबाम, जोराम यालाम. (2016). साक्षी है पीपल, नई दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स. पृष्ठ-38

[18] जैन, अरविंद. (2016). औरत होने की सज़ा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ-52

[19] नाबाम, जोराम यालाम. (2016). साक्षी है पीपल, नई दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स. पृष्ठ- 41

[20] Sohaila Abdulali, What We Talk About When We Talk About Rape, Penguin Random House India Pvt. Ltd., 2018, Page-8

[21] जैन, अरविंद. (2016). औरत होने की सज़ा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ- 238

[22] वही, पृष्ठ- 238

[23] नाबाम, जोराम यालाम. (2016). साक्षी है पीपल, नई दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स. पृष्ठ- 43

[24] वही, पृष्ठ-44

*(**लेखकीय परिचय:** डॉ. अभिषेक कुमार यादव युवा आलोचक एवं साहित्य के गंभीर अध्येता हैं, वर्तमान में राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं। चेबी मिहु राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोध-अध्येता हैं।)*

असमीया विवाह गीतों में राम का प्रसंग

करबी भूयाँ

वाल्मीकि कृत 'रामायण' एक महाकाव्य है। भारतीय संस्कृति में इसे घरेलू जीवन का आधार माना जाता है। विश्व की किसी भी संस्कृति में 'रामायण' जैसा महाकाव्य नहीं है। यह एक राष्ट्र की अस्मिता का परिचायक है। 'रामायण' भारतीय समाज के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि देश की प्रायः सभी भाषाओं में रामकथा को लेकर ग्रंथ की रचना हुई है। प्रायः प्रत्येक भारतीय रामकथा जानते हैं, यह अपने प्रदेश की ही कथा लगती है। 'रामकथा' में दिये गये शाश्वत जीवन मूल्यों के कारण पूरे भारतवर्ष में यह सुप्रचलित है। 'रामकथा' घर-परिवार और समाज के समक्ष प्रेम से भरे त्याग का आदर्श रूप है। सदाचारमय जीवन-यापन की शिक्षा भी रामकथा से मिलती है। भारत भूमि के प्रत्येक चप्पे पर रामकथा की छाप है। कितने ही पर्वत, झरने और कुण्डों के नाम रामायण के पात्रों से संबंधित हैं। देश के कई स्थलों पर वाल्मीकि के आश्रम हैं। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि राम का उदात्त चरित्र ही भारतीयता है।

भारतीय संस्कृति का एक अन्यतम किस्सा है, लोक साहित्य। सामान्य जन से जुड़ा हुआ जो साहित्य है, उसे ही लोक साहित्य कहा जाता है। यह समाज का दर्पण-स्वरूप है। लोग अपनी सामान्य भाषा में ही अपने मन के भावों को लोक साहित्य के माध्यम से प्रकट करते हैं। लोक साहित्य शास्त्रीय साहित्य की जननी होती है।

पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों में सैंकड़ों जनजातियाँ रहती हैं। सबकी भाषा संस्कृति अलग-अलग है। इसी के चलते लोक साहित्य में भावों की अभिव्यक्ति में भी अंतर पाया जाता है। पूर्वोत्तर भारत लोक साहित्य से समृद्ध है। असम पूर्वोत्तर भारत का अंग है। असम प्रदेश की भाषा असमीया है और यहाँ की अनेक जाति जनगोष्ठियां से मिलकर बृहत् असमीया समाज का निर्माण हुआ है।

असमीया लोक साहित्य के अंतर्गत कहानी, लोकगीत, दृष्टांत, मुहावरा, लोकोक्ति, मन्त्र आदि आते हैं। असमीया समाज व्यवस्था में विभिन्न उत्सव, अवसर, सामाजिक अनुष्ठानों में लोकगीत गाए जाते हैं। असमीया भाषा में प्रचलित लोकगीतों में प्रमुख हैं- श्रम गीत, बिहु गीत, निचुकोनी गीत (लोरी), देवियों के गीत, बारह महीनों के गीत, ओजा पालि गीत आदि।

असमीया लोक गीतों के अधिकांश गीतों में नारी मन की भाव और अनुभूति का विशेष रूप से प्रतिफलन परिलक्षित होता है। विवाह या शादी प्रत्येक समाज और संस्कृति का एक अनिवार्य अनुष्ठान है। असमीया समाज में प्रचलित विवाह प्रथा में नारी की भूमिका सर्वोपरि है। विवाह में असमीया औरतें (आयती) विवाह गीत के माध्यम से अपनी अपूर्व कवित्व प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं। विवाह गीत के माध्यम से एक अनपढ़ औरत भी अपने जीवन के अभिज्ञता से समाज जीवन और सांसारिक जीवन के विविध

दायित्वों को भी प्रकाशित करते हैं। शब्द प्रयोग एवं उपमा आदि अलंकार के प्रयोग, भाषा की सरलता, चित्रधर्मिता, गीतिधर्मिता आदि विवाह गीत की मूल विशेषता है। इसके साथ ही असमीया समाज में प्रचलित रीति नीति, आचार व्यवहार और प्रकृति वर्णन भी प्रतिफलित हो उठते हैं। असमीया तथा भारतीय परंपरा विवाह गीतों की अन्यतम विशिष्टता है।

लोक जीवन में विवाह के समय प्रत्येक वर राम और प्रत्येक दुल्हन सीता हो जाती है। असमीया विवाह गीत में 'रामायण' के उपादान विशेष रूप से प्रतिफलित होते हैं। महाकाव्य के प्रधान चरित्र एवं नायक नायिका राम और सीता को विवाह गीत में स्थान दिया जाता है। राम और सीता के आदर्श मिलन की कथा को स्मरण करके वर-वधू को भविष्य के लिए आशीर्वाद दिया जाता है। विवाह गीत में औरतें (आयती) बार बार 'राम राम' अथवा 'ऐ राम' शब्द का प्रयोग करते हैं। जैसे:

"राम राम पाणत पत्र लेखि
राम राम दिलेहि आइदेउ
राम राम पाणत पत्र लेखि दिले।।
राम राम सेई पत्रखन
राम राम पाई रामचंद्रई
राम राम अलंकार पठियाई दिले।।

(यहाँ सीता के द्वारा राम को पत्र भेजने की और पत्र पढ़कर राम द्वारा सीता के लिए अलंकार भेजने के प्रसंग का उल्लेख है।)

विवाह कार्यों के विभिन्न समय में अर्थात वर-कन्या को नहाने के समय, सजाने के समय, दुल्हा-दुल्हन को नहाने के लिए पानी लाते समय, दुल्हा का स्वागत करते समय, अग्नि को साक्षी मानकर फेरे लेते समय विवाह गीत गाए जाते हैं और प्रत्येक प्रसंग में राम सीता का उल्लेख मिलता है। दुल्हा को स्नान कराते समय इस प्रकार गाते हैं-

"उलाई आहा रामचंद्र
ऐ हे दुवारदलि बाजे
घरते नोवाब माजे
ऐ हे नकरिबा लाजे"

(अर्थात यहाँ दुल्हा को सम्बोधित आयती कहती हैं कि हे रामचंद्र हम तुम्हें नहवाने आये हैं, तुम लज्जा मत करो और दहलीज पार करके बाहर आ जाओ।)

जब दुल्हा के घर से दुल्हन के लिए कपड़ा- आभूषण आता है, तब कन्या को लक्षित करके यह गीत गाया जाता है-

"रामरे घररे अये अलंकार

आनिछु सराइ भराई
भितरते बहि कि करा जानकी
लोवाहि माथा दुवाई।।

(अर्थात जानकी, तुम्हारे लिए राम के घर से आभूषण लेकर आए हैं। तुम घर के अन्दर बैठकर क्या कर रही हो? बाहर आकर तुम इसे स्वीकार कर लो।)

कन्या को जब वर के घर से देने वाले आभूषण पहनाते हैं, तब आयती इस प्रकार गाती हैं-

"मारार अलंकार थोवाहे जानकी
पितारार अलंकार थोवा हे
रामे दि पठाइसे विचित्र अलंकार
हाते जोरे करि लोवा हे।।"

(इसका अर्थ इस प्रकार है- जानकी तुम माता पिता द्वारा दिये गये अलंकार खोल दो, रामचंद्र ने तुम्हारे लिए विचित्र अलंकार भेजे हैं, तुम हाथ जोड़कर इसे स्वीकार करो।)

असमीया विवाह गीतों में राम-सीता के साथ -साथ अयोध्या, मिथिला आदि नाम भी संयोजित किया जाता है। राम- सीता को आदर्श दम्पति के रूप में वर-वधू के साथ तुलना करते हुए गाते हैं-

"सीताक लै रामचंद्र अयोध्यालै जाय
नगरर प्रजासबे बेरि बेरि छाय
धनु भांगि रामचन्द्रई सीताक लैया जाय
परशुरामे युद्ध करे बाटत लगे पाय।।"

(यहाँ श्री रामचंद्र द्वारा हरधनु तोड़कर सीता को जीतकर अयोध्या ले जाने का प्रसंग है।)

जब दुल्हा दुल्हन अग्नि को साक्षी मानकर फेरे लेने बैठते हैं, तब विवाह गीत इस प्रकार गाए जाते हैं-

"उठोते बहोते हुमते घूरोते
रामचन्द्रर लागिछे दुख,
सकलो दुखके गुछे रामचन्द्रर
देखिले जानकीर मुख।।

(अर्थात उठते-बैठते और फेरे लेते समय राम को बहुत दु:ख अनुभव हो रहा है, लेकिन जानकी का मुख देखकर उनके सारे दु:ख दूर हो जाते हैं।)

असमीया विवाह प्रथा में वर का स्वागत करना, पानी लाना (पानी तोला), कन्या को वर के हाथों अर्पण करना, अंगूठी खोजना, पाशा खेलना आदि अनेक रीति रिवाज प्रचलित हैं। विवाह के एक दिन बाद (बाहि बिया) जब वर-वधू खेल-खेलने बैठते हैं, तब इस प्रकार गाते हैं-

"पातिले पाशार खेला रामे सीताई बहि,
सीता रामे पाशा खेले साक्षी आछे सखी।"

(अर्थात देखो राम और सीता पाशा खेल खेल रहे हैं और सभी समाज उनका साक्षी है।)

विवाह संगीत के माध्यम से नारी के मन, रूप-लावण्य और नारी जीवन के विविध चित्र प्रकाशित होते हैं। भविष्य में राम और सीता को आदर्श मानकर इन गीतों के माध्यम से जीवन आगे बढ़ाने के लिए वर-वधू को उपदेश दिया जाता है। जब भरे समाज में दुल्हा बार-बार दुल्हन की तरफ देखता है, तब औरतें दुल्हा को चिढ़ाने के लिए गाती हैं-

अलनि दलनि पका चपरानि
आमार हाते भरि भांगे,
तेउ नपतियाई आमार रामचंद्रई
तेउ बोले जानकीक लागे।

(इसमें आयती कहती हैं कि हम इतने सारे रमणी (नारी) राम को पाने के लिए तड़प रहे हैं, लेकिन फिर भी राम सिर्फ जानकी को ही पसंद करते हैं।)

इस प्रकार असमीया लोक संगीत के अन्यतम अंग विवाह गीत में रामायण के कथा एवं उपादानों को प्रमुख स्थान मिला है। विवाह गीतों में मूलतः रामायण के नायक-नायिका राम और सीता को स्मरण किया जाता है। राम भारतीय समाज के आदर्श पति हैं। विवाह एक पवित्र अनुष्ठान है। विवाह के माध्यम से एक पुरूष और एक नारी पूरे जीवन के लिए बंधे जाते हैं। इसलिए इस पवित्र क्षण में राम-सीता का स्मरण शुभ माना जाता है। विवाह गीतों में प्रायः राम-सीता का उल्लेख मिलता है। असमीया लोक-संस्कृति के तहत विवाह में रामायण के जो उपादान प्रतिफलित हुए हैं, वह सचमुच में लोक परंपरा का एक उत्कृष्ट निदर्शन है। इसके माध्यम से 'रामायण' महाकाव्य की विशेषता एवं प्रभाव का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

नेउग, महेश्वर. असमिया साहित्यर रूपरेखा, चन्द्र प्रकाशन.
बरदलै, निर्मल प्रभा, असमर लोक संस्कृति: चन्दन दे प्रकाशन.
बिरिंचि, कुमार बरुवा. असमर लोक संस्कृति: चन्दन दे प्रकाशन.
शर्मा, सत्येंद्र नाथ. असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त: सौमार प्रकाशन.

*(**लेखकीय परिचय:** करबी भूयाँ लंका महाविद्यालय, असम के हिंदी विभाग में अतिथि प्राध्यापिका हैं।)*

 ISSN: 2582-6530

प्रवीण खालिंग की दो कविताएं

(1) प्रेम की मौत

सूखी आंखों में निहारना
मिलेगा आंसूओं का कब्रिस्तान
खामोश होठो पर देखना
मिलेगा अनकही कहानियों का शव।

छूकर तो देखो
अभी मेरे भीतर चल रही है एक अनंत यात्रा
जहां पहुँचकर याद करूंगा प्रेम और क्रान्ति को

इनकी आत्मा अब पिघल चुकी है
कंचनजंघा की ऊंचाई इसके आगे झुक गई है
जैसे झुकता है बुढ़ापा
मर जाती है उनकी जैविक आत्मा
जैसे स्पर्श के साथ ही
मर जाता है प्रेम।

तुम्हारी यात्रा का मैं एक यायावर हूँ
तुम्हारी कल्पना का मैं एक चित्र हूँ
तुम जानते हो कि
भीषण एकांत में
सिर्फ अवसाद पनपते हैं
मूर्तियाँ ढह जाती हैं
खंडहर और गहरे हो जाते हैं
मैं तुम्हारी स्मृति में
पत्थरों को इकट्ठा करूंगा
जिस पर लिखूंगा तुम्हारा नाम
तुम्हारे समय का इतिहास और भूगोल
देखना तब दुनिया तुम्हें बहुत खूबसूरत लगेगी।

(2) बाद में

सड़कों पर फिर से गाय
सड़कों पर फिर से गाड़ी
सड़कों पर फिर से लोग
चलने लगेंगे
फिर से नेता अपनी कुर्सी संभालने लगेंगे।
दोनों मुल्क के बादशाहों के हाथ मिलेंगे।
मीडिया में शांति के उड़ेंगे परिंदे
बागीचों में फिर से खिलेगें फूल
बच्चे स्कूलों में युद्ध का नया इतिहास रटेंगे
जिंदगियाँ नए इतिहास
नए भूगोल
और
नई सरकारों के साथ चलने लगेंगी।

परंतु
वह पिता जिस का बेटा मारा जाता है युद्ध में
वह मां जिस के जिगर का टुकड़ा खो जाता है युद्ध में
वह पत्नी जिसका सुहाग मिट जाता है युद्ध में
और
वह बच्चा जिसके सिर से उठ जाता है बाप का साया
वही जानता है
नेताओं के सपनों के आगे
नेताओं के अहंकार के आगे
हमेशा किसकी होती है हानि
वही पीड़ित परिवार जानता है
क्या हस्र होता है युद्ध का
बाद में।

*(**लेखकीय परिचय:** प्रवीण खालिंग युवा कवि, पत्रकार एवं चिया कविता मंच, सिक्किम के समन्वयक हैं।)*

जमुना बीनी की तीन कविताएं

(1)

बचे रहने की उम्मीद

जब नदी
तुम्हें लीलने के लिए
आगे बढ़ी
तुम ऊँचे पहाड़ों में
भाग गए
घने जंगलों के
लंबे
और
चौड़े पेड़ों पर
चढ़ गए
स्वयं को बचाने
और
अपनी नस्ल को
विलुप्ति से।

तुम्हारे
आदिवासी-बोध ने बतलाया
तुम्हें पहाड़ों
और
जंगलों की ओर
भागना चाहिए
वहाँ ऊपर
दुश्मनों से
महफूज रहते आए
अनगिनत काल से

तुम भागते जाते हो
जब तक

तुम्हारी साँसें नहीं रुकती
पैर जवाब नहीं देता
फिर
तुम आश्वस्त होते हो
कि
तुम्हारे लोग
तुम्हारे बाद भी जीयेंगे
तुमसे अधिक जीयेंगे
संसार को बतलाने
तुम्हारी अद्भुत-अनोखी संस्कृति
आदिवासी संस्कृति के बारे में।

(2)

पहाड़ और आदिम निवासी

हमारे पूर्वज
तनिक भी
खतरा महसूसते
दुर्गम पहाड़ों पर
चले जाते।

पहाड़ों की
यह दुर्गमता
उनका रक्षा-कवच होता
पहाड़ों के
बीहड़ जंगल
उन्हें सुरक्षा
और
आश्वस्ति देता।

पहाड़ों की गगनचुम्बी
ऊँचाई पर
बादल रुई के फाहों सा
तैरता रहता
खुरदरे हाथों से
वह उनके
नरमाहट को सहलाते।

पहाड़ों की ओट में
डूबता-उतराता सूरज

आँख-मिचौली खेलता

यह पहाड़
शरण है
हमारे पूर्वज का
अलग कैसे करोगे
पहाड़
और
उसके आदिम निवासी को !

(3)

कब समझोगे

अनंत काल से
चली आ रही
परंपराओं
और
आदिम आस्थाओं में
छिपा दर्शन को
तुम कब समझोगे।

पर्व-त्योहार में
शस्त्रों से
सुसज्जित होना
तुम्हें बर्बर लगता।
बीहड़ जंगलों में
दुर्गम पहाड़ों में
चौड़ी बहती
नदियों में
मौन ठहरती
झीलों में
आत्माएँ निवास करती हैं
उन्हें
सताते नहीं
यह सुन
तुम्हारी आँखें
विस्मय में
फैल जाती हैं !!

ओझा के
मंत्रोचारण में
चूजे के
कलेजे-परीक्षण में
अंडे के जर्दी में
स्वप्नों के रहस्य में
जो श्रद्धा गुथित है
तुझे अर्थहीन लगता।

मृत पूर्वजों की कथा में
हास्य है
रुदन है
जन्म का उल्लास है
मृत्यु का मातम है
युद्धों का विजय घोष है
पराजय का विलाप है
पूरा एक इतिहास है
इतिहास को
परखने की
एक दृष्टि है
तुम उसे देखना
नहीं चाहते।

तुम्हारे लिए
आदिम आस्था
और
श्रद्धा का
अर्थ ढकोसला है।

तुम अपने बचाव में
आधुनिक शिक्षा का
तर्क देते हो
मात्र
तर्क के लिए तर्क
प्रश्न के लिए प्रश्न

बिना उस दर्शन को जाने
जो तुम्हारे

पूर्वजों की
विश्वदृष्टि हुआ करती थी

बिना उस पथ को चीह्ने
जिस पथ पर चलकर
तुम्हारे पूर्वजों ने
अतीत से
वर्तमान की संघर्षशील यात्रा
तय की थी।

(**लेखकीय परिचय**: जमुना बीनी चर्चित कवयित्री एवं कहानीकार हैं। वर्तमान में राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।)

 ISSN: 2582-6530

दीपा राई की चार कविताएं

(1)

बारिश का आगमन

उसका धीरे-धीरे बरसना
ठहरे हुए मन की न जाने कितनी
परतें उधेड़ कर रख देता है।
उसका आना
ठीक वैसे ही है
जैसे बारिश का आगमन।

मैं रात भर बारिश को सुनती रही
धीरे-धीरे बरसता रहा उसका गीत
लगता है बहुत अरसे बाद
कोई गा रहा है दूर देश में।

(2)

सर्दी के दिन

ये सर्दी के दिन
कितने प्यारे लगते हैं
लगता है खिड़की
एक कथावाचक है
और मैं मगन होकर
आँखों से सब सुन रही हूँ
कानों से देख रही हूँ

लिहाफ के अंदर सिमटकर
चाय की चुस्कियां
और ये अनुभूतियां
सच में कितनी प्यारी लगती हैं

जैसे स्मृतियों में धँस गए हों अब
ये सर्दी के दिन।

(3)

कूची

रंग से कूची का नाता कहें तो
हजारों वर्षों से है
रंग के बिना कोई तरंग नहीं है
कूची के जीवन में
जब रंगों की सांस में घुल जाती है कूची की
स्मृतियाँ
खिंच जाती है एक लकीर
और चूमती है गर्म होठो से
कोरा कैनवास।

यकीनन उस आकार के भीतर
कोई जिंदा हो जाता है
कुछ हलचल हो जाती है
उनके अंदर
तब... हठात उठ जाती है वह लकीर
और चलने लगती है
ख़्वाब और हकीकत के दरमियाँ।

समय के कैलेंडर में देखती है कूची
अपने रूह को
महसूसती है
शताब्दियों के चित्र-यात्रा को
इतिहास की निर्मम हत्याओं को
जिसे वह भूल जाना चाहती है।
कूची ने हिला के रखा है रंग के भूगोल को
जिस भूगोल की कोई सीमा नहीं
कोई नाकाबन्दी नहीं
कोई दीवार नहीं

उसी भूगोल की आंखो ने देखा है
भ्यान गग की कूची के
होठो से पिघल रही स्टोरी नाईट को
देखा है, पिकासो की गुयेर्निका के मुठ्ठी उठाते हुये
विद्रोह को....
देखा है, लैनसिङ बाङदेल की कूची से चू रहे
नेपाली घाव को
जब-जब छुवा है
कूची के कठोर होठो ने
रंग की कोमलता को
तब तब गाया है कैनवास ने कभी न गाया हुआ
आदमी का पीड़ा गीत...

(4)

बारिश के हरे रंग

कड़ाके की ठंड चिकोटी काटती बाहर
यादों की गर्ममाहट ओढ़े मन मन के भीतर
बेसब्री से करती है सवेरा होने का इंतजार
बारिश से धूल मिट्टी-बंजर
एक बार फिर हरा-भरा होने को आतुर हैं

बारिश धीरे-धीरे पाव रखती सूखे पत्ते पर
सरसराहट पैर के हर छुअन पर
लेकर आती दूर कहीं से एक खुशबू
हरे रंग मचल जाते हैं
चारो ओर छाने के लिए
धरती के सूखे होठो पर गिरती कुछ नमियां
उर्वर होने को मचलती
इस कंचन धरती की काया
यह बारिश नहीं,
धरती के हरे होने का संकेत है।

(लेखकीय परिचय: दीपा राई हिंदी-नेपाली की चर्चित कवयित्री एवं चित्रकार हैं। हिंदी साहित्य सेवा समिति, सिक्किम की सक्रिय सदस्य के रूप में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में संलग्न है।)

जोराम यालाम नाबाम की चार कविताएं

(1)

उनका इस तरह आना

माँ कहती थी
"इन्द्रधनुष की तरफ ऊँगली मत करना
उँगलियाँ जल जाएंगी
रंग प्रकट हुए थे हमसे पहले"
आसमान रंगों से जब सजता है
लाल बीड्स की माला पहने
वहीं से
मेरी माँ अचानक झाँकती है
मुझको उनका इस तरह आना
बहुत अच्छा लगता है
मेरी साँसों का भीगना
आवाजों का टूटना
सब अच्छा लगता है।

(2)

अपनी कथाओं को रोज खंगाला करेंगे हम

इतिहास मिटाना है हमारा ?
पूर्वजों से उलझना है ?
अरे देखो
पर्वतों का अस्तित्व मिटाना है इन्हें !
जबकि
बादलों की संतानें रोज गाती हैं
जल से बना पत्थर
पत्थरों से बनी नदियाँ
नदियों से बने हम
और इस तरह
पत्थरों की संतान हैं हम
सुनो,
अपनी कथाओं को
रोज खंगाला करेंगे हम।

(3)

बारिश किसी रोज

युद्ध अपनों से ही हो
तो बेहतर है मौन
बादल की संतान हैं हम
बारिश किसी रोज
नई भाषा बरसाएगी
कोंपलें फिर फूट आएंगी
और हमने भी
सदियों इंतज़ार का वादा किया है ....

(4)

वे कभी नहीं मरेंगे

वे मारे गए लोग
मनुष्य के अहं से निर्मित युद्धों में
मनुष्यता से जबरन वंचित किए लोग थे
नागालैंड के पहाड़ों ने
उन्हें हृदय से लगा लिया
बादल माँ और नदी पिता हैं
फूल बन फिर उग आए
वे कभी नहीं मरेंगे ...

*(**लेखकीय परिचय:** जोराम यालाम नाबाम चर्चित कथाकार हैं। वर्तमान में राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में एसोशिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।)*

सविता दास सवि की पाँच कविताएं

(1)
पगडंडी

इन पगडंडियों के किनारे
बसता है सीधा-सादा गाँव
लहलहाते हरे-भरे खेत,
किसानों के सपने
और
उनके घर वालों की उम्मीद...

सहज सी आशाएं
हर प्रहर पूरी करने की ललक
बहुत दूर का सपना
नहीं देखता गाँव
फिर ये पगडंडी जुड़ जाती है
मिट्टी की सड़क से
और सड़क जुड़ जाती है
शहर के राजमार्ग से
सपने उड़ने लगते हैं
विलासिता के आसमान में
कहीं उदास रह जाती है,
सुनसान पगडंडी, निश्छल सपने
और ये सीधा-सादा सा गाँव।

(2)
उत्सवों का स्वागत

जीवन के अद्भुत आश्चर्यों से रोमांचित
हम सब
मुरझाते फूलों को देख

उदास नहीं होते
आशाएं
किसी पंछी के हल्के
पंख सी उड़ती
किसी नाज़ुक तितली सी
धूप में मगन क्यारियों में
गश्त लगाती रहती
आकांक्षाओं को भी
हर दम
सींचता है मन।

लोगों की उपेक्षाओं को
खाद बनाकर
मन की उदासी बारिश के
बुलबुलों सी क्षण में
अस्तित्व खो देती
आंधी, तूफानों के बाद भी
शरद ऋतु में खिल जाता है मन
जानता है
कांस के फूल फिर खिलेंगे
वह सजता और सजाता है
अपने इर्द-गिर्द की दुनिया को
फिर से उत्सवों का स्वागत
करने के लिए।

(3)
इंतज़ार किया जा सकता है

रात का गहन अंधकार
अवसादों को और उकसाता है
थोड़ी उपेक्षा करना ज़रूरी है
ऐसे में
पीड़ाओं को
हताशाओं को
यह सोचकर कि
आगे सिर्फ रोशनी
का मंजर है

इंतज़ार सुबह का किया

जा सकता है
प्रेम में ख़ुद को भुलाकर
किसी की हथेली में
अपनी हथेली को सौंपकर
आंखों में
उम्मीद की आस लेकर
रोशनी का इंतज़ार
किया जा सकता है।

(4)

कुछ नहीं

तुम्हारे जीवन में
कुछ नहीं
बनकर रहना
अच्छा लगता है

जैसे सवाल और जवाब
के बीच का कुछ नहीं
जैसे कोरे कागज़ और
उसमें लिखे जाने वाले
शब्दों के पहले का
कुछ नहीं।

(5)

अधिकार

अपने अधिकार में
लेना चाहती हूँ
पृथ्वी पर बची हुई
कुछ अनोखी चीजों को
जानती हूँ उसे ढूँढ़ना
उतना मुश्किल नहीं है

बस एक दिन उठना होगा
सूरज से पहले।

*(**लेखकीय परिचय:** सविता दास सवि असम की चर्चित कवयित्री हैं। हाल ही में उनके कविता संग्रह 'किनारे पर आकर' को साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद द्वारा पुरस्कृत किया गया है।)*

समीर तांती की चार कविताएं

(असमीया से हिंदी)

अनुवादक: दिनकर कुमार

(1)

धुआँ

मठ मंदिर और दरगाह
मेरे अंदर
अंगड़ाई लेते हैं

कितनी अप्सराएं और गंधर्व
कितने किन्नर-किन्नरी, यक्ष
आकर बैठे हैं साधु संन्यासी, पीर के बगल में

रात ने करवट बदली है
मेरे बदन पर उग आए हैं
हजारों साल के वृक्ष-लता, फूल-पत्ती-जड़ें
पंछी, पशु और सरीसृप के कदम

उड़ रही है हजारों साल की धूल
हजार साल के कीचड़ में
सड़ रहे हैं दोनों पैर
प्राचीन से भी प्राचीन

हाथ में लहू और आंसू की कटोरी
आंखों में लाखों करोड़ों वर्षों का नशा
होठों पर बुत बन चुका होठ का नशा

बोलना चाहता हूं बोल नहीं पाता
दोनों आंखों ने पंख फैला दिया है
जीभ पर अनंत काल की प्यास

तुम मुझे करीब खींचते हो

सुबह हो रही है
मैं नहीं हूं
खाली चटाई

चटाई पर एक मृत रात की गिरी हुई नींद

नींद में निहत चेहरे
मैं प्यार से बटोरता हूं
गिरे हुए मठ मंदिर के पल को
वही मेरी विपन्न काव्यिकता

एक मृत कविता से धीरे धीरे
उतर आई
एक शुद्ध सुबह
हजारों अनाविष्कृत दिनों की अधिविद्या

तुम मुझे पाने के लिए व्याकुल हो उठे हो
मैं जो अभी अधिविद्या के सीने में
कुंडली बनाकर उड़ने वाला धुआं।

(2)

आओ चलते हैं

आओ चलते हैं
दुख विदा जुदाई विदा
हे मेरी ख्याति लाने वाली साजिश
विदा
विदा हे अत्याचार का इतिहास

विदा मेरी अवहेलना करने वाला संभ्रांत समय
मेरे प्रिय मित्र गण विदा

मैं तो सुन रहा हूं
तुम लोगों ने नहीं सुनी है
गमगीन गमगीन

हौले हौले बज रही है वह धुन

रंगीन, बेशकीमती
करो, वहीं बातें करो
जहां इतने दिनों से थे और हो
वही बातें करो

विदा
हे मुझे कर्जदार बनाने वाला अपमान
विदा मेरी वासना का लुभावना भंडार
विदा हे यश और अर्थ की तन्हाई
प्रशंसा और कलंक
तुम लोगों को भी विदा भाई

मुझे रहने दो इसी तरह
इस सरलता की हंसी और नग्न ठिठोली के बीच
जहां प्रत्येक भूख और शोक
भोगाली मेले का आयोजन करते हैं

विदा विदा
मुझे धन्य करने वाले हे मेरे अभाव का मौसम
विदा मेरी समझौता करने वाली मानसिकता
विदा मित्र, तुम लोगों को भी विदा

अभी ही है जाने का समय
अंधेरे के पीछे पीछे
तूफान बारिश का फाटक खोल कर
आनंद के प्राचीन महल की तरफ

जंगल बीहड़ में फैला कर
गुलाबी-पीली धूप

मेरी मिट्टीमय माशूक की
रंगीन प्रीति का उत्सव।

(3)
चलते हैं, आओ

आओ चलते हैं
भूख सलाम, प्यास सलाम
सलाम हे पेट नामक अजगर
सलाम बंजारे बादल, उद्भ्रांत नदी, उन्मादित झरना
हे मेरे उन्मादित सागर तुमको भी सलाम

हे गर्भ तुमसे ही बटोरा था भूख को
क्रमश: टूटता हुआ मिट्टी का शोक
ओ मेरी जुबान, तुमसे ही वह राह, पगडंडी
अन्य एक समय, दु:समय
रोग आक्रांत रात

क्षयशील दोनों हाथों से तोड़कर शिलामय दिन
काटता है प्रत्येक प्रहर
प्रज्वलित अग्नि
सृजन और मनन का
आलोकित मार्ग

तकनीक सलाम ध्वंस सलाम
सलाम हे विभीषिका की इच्छा
सलाम नक्षत्र देश के अधिवासी, आकांक्षित प्रकाश

स्वागत तोरण
अन्य एक समय, अनतिक्रम्य काल, शुद्धता का मौसम

हे यात्रा दो हाथ दो
पार करूं दुख की बोझिल राह
संकट के हजारों तोरण के बीच से
उद्यापन करूं तुम्हें
उत्सव अनादि अनंत काल
क्रमश: उज्ज्वल मुक्त
मेरी प्रज्ज्वलित प्रज्ञा

देश देश में, घर-घर में राह-राह में
आजीवन पड़ताल।

(4)
थोड़ा पानी थोड़ी मिट्टी

थोड़ा पानी, थोड़ी मिट्टी और थोड़ी धूप
उसके बाद प्यार

मैं जहां से आया हूं
और जहां लौट जाऊंगा कल

मुझ पर आरोप लगाने वाले इस विफल दृश्य में
मैं तुम्हें सजा कर रखूंगा फूल की पंखुड़ी की तरह

अभी रोशनी उसके बाद अंधेरा
कल रोशन वह विषाद

नीले नीले मेरे एकाकीपन में
आराम करो

थोड़ा पानी थोड़ी मिट्टी और थोड़ी धूप
उसके बाद जुदाई

मैं खो दूंगा अपनी आवाज
तुम खो जाओगे अपनी छाया में

हरियाली ढूंढेंगी इस जुबान पर
जुबान माफी मांगेगी सूरज से

उसके बाद कोई किसी को नहीं देखेगा
कोई किसी को याद नहीं रखेगा

नीली-नीली मेरी बारिश में
एक बार नग्न बन जाओ

थोड़ा पानी थोड़ी मिट्टी और थोड़ी धूप
उसके बाद भिक्षा
हवा ने जहां सुरों को बटोरा था
और जहां जाकर पहेली बनेगी

मुझे आज गलत मत समझना
मैंने तुम्हें भी गलत समझना सीखा नहीं

चारों तरफ कब्रें उसके बाद हंसी
फिर वही कब्र हमारी आखिरी मुलाकात

नीला-नीली मेरी नग्नता में
एक बार चांदनी बनो

थोड़ा पानी, थोड़ी मिट्टी और थोड़ी धूप
कितनी खूबसूरत यह धरती।

(लेखकीय परिचय: समीर तांती असमिया भाषा के सुपरिचित कवि हैं। इनकी कविताओं का हिंदी अनुवाद दिनकर कुमार द्वारा किया गया है। दिनकर कुमार असमिया-हिंदी के अनुवादक हैं। यह मूलतः हिंदी के चर्चित कवि हैं। वर्तमान में गोवाहाटी, असम में रहते हैं।)

 ISSN: 2582-6530

मनमाया लिम्बूनी: विक्रमी संवत्

मूल कृति: भीम दाहाल
अनुवादक: सुवास दीपक

इस चबूतरे पर कोई अपनी या अपने आत्मीयजन की आत्मा की शांति के लिए आता हो या अपने दु:ख बाँटने को इस पचड़े में गोवर्धन बाँस्तोला अपना सिर खपाना नहीं चाहता। बात सिर्फ इतनी-सी है कि कोई हट्टा-कट्टा किसान डेढ़-दो मन धान का बोरा उतार कर तंबाकू का कश खींच कर तो कोई कमजोर बटुक चढ़ाई के रास्ते यहाँ पहुँच कर कुछ पल बैठ कर अपनी थकान मिटाता है।

उस ओर टीले की प्राथमिक पाठशाला से उसे चौथी श्रेणी में उत्तीर्ण कराने वाला यही चबूतरा है। गणित के कठिन सवाल उसने इसी चबूतरे पर बैठकर हल किये हैं और नेपाली भाषा के जनक आदिकवि भानुभक्त आचार्य द्वारा विरचित आठ पंक्तियाँ[1] भी उसने यहीं बैठकर कंठस्थ की हैं। आज तो सिर्फ बाकी के "मनमाया लिम्बूनी और विक्रमी संवत्" स्पष्ट स्मृतिपट वाले इस चबूतरे से उसका एक जाती रिश्ता है। ठंडे पहाड़ों की सिलबट्टे की तरह फिसलन भरी चट्टान से यदि यह चबूतरा न बना होता तो यह और वह और उसका पोता, सभी इस युग में नहीं होते। चट्टान ही युग का प्रहार सहन कर सकता है और युग ही चट्टान से थक कर भागता है, इसका प्रमाण उसने इसी चबूतरे से पाया है। लगन की गाँठ बाँध कर वैदिक ऋचा से अग्नि को साक्षी रख कर यज्ञ में फेरे लगाए और वही प्राणपन पत्नी उसे और उसकी रातों का तिरस्कार कर विलीन हो गई लेकिन इस चबूतरे ने उसे कभी अस्वीकार नहीं किया। इसके साथ उसका एक कभी न भूले जाने वाला रिश्ता है। एक राजदान दोस्त की तरह वह इसके साथ बैठ कर मनोविनोद करता है, हँसता है, रोता है। बारह बजे की रिसेस में उसके और इसके बीच के तादात्म्य में खलबलाहट डालने वाले उदंड स्कूली बच्चों को वह पतले बाँस की तिरछी छड़ी से दूर भगा देता है। कुछ दूर परे जाकर शरारती बच्चे हँसते हैं – मानो उसके और उसकी छड़ी का दौर्बल्य इन बच्चों को भी मालूम हो चुका है।

पचहत्तर सालों तक वसंत और पतझड़ देख चुके बूढ़े गोवर्धन को यदि कोई चाहता है तो यही मुश्किल से पाँच साल का उसका पोता है। वह उसी स्कूल में पढ़ता है, जहाँ वह पढ़ता था... परले टीले पर। पोते की तीन बजे छुट्टी होती है, और यहाँ वह उसका इंतजार करता रहता है। पोता उसके आगे-आगे चलता है, वह उसके पीछे-पीछे। घर पहुँचते हैं दोनों, हमेशा इसी तरह...!

गोवर्धन यह नहीं कहता कि उसका बेटा और बहू उसे नहीं चाहते। इज्जत मिलती है, प्यार मिलता है लेकिन किसको कितना देना है, उसे तोलना मुश्किल ही है। अंधेरी रात बहू के बाहूपाश में बिताने वाला

[1] भर् जन्म घाँस तिर मन् दिई धन कमायो/ नाम क्यै रहोस् पछि भनेर कुवा खनायो/ घाँसी दरिद्र घरको तर बुद्धि कस्तो/ म भानुभक्त धनी भैकन किन यस्तो ।/ मेरा ईनार न त सत्तल पाटिकै छन्/ जे धन चीजहरु छन् घर भित्रनै छन्/ त्यस घाँसीले कसरी आज दिए छ अर्ति/ धिक्कार हो म कन बस्नु न राखि किर्ति । (वाल्मिकी रामायण का सरल नेपाली भाषा में भावात्मक अनुवाद करने से भानुभक्त को नेपाली भाषा के 'आदिकवि' की उपाधि प्रदान की गई। उक्त पंक्तियाँ उन्होंने एक घसियारे से प्रेरित होकर लिखी, ऐसी मान्यता है।)

बेचारा पिरथीलाल तड़के ही उस रात भर के प्रेम को बिसरा कर कैसे अपने बाप से समझौता करवा सकता है? उसमें उसे पिरथीलाल का कोई कसूर नहीं दिखता है। आदमी बूढ़ा होता है – पोते बीरू को इसका ज्ञान नहीं है, इसीलिए पोते और गोवर्धन के बीच का प्रेम ही एक युग है – समयुगी, समकालीन हैं हम...।

पिरथीलाल को भी गर्म चुंबन और एक तप्त आलिंगन में गृहस्थ जीवन का सुखद पक्ष भोगने का अधिकार है। गोवर्धन की तरह अकेले हो जाने के बाद पिरथीलाल को भी खुद और बुढ़ापे के सहारा लाठी के बीच के संसार में गुजरने के लिए मजबूर होना पड़ेगा – एक अनपेक्षित संसार, एक बेमेल संसार!!

आदमी को बीमारी घसीट कर शवगाह तक नहीं ले जा सकती, विज्ञान कुछ राहत देता है। यदि विज्ञान ने विगत जीवन को तत्काल बिसराने वाली औषधि भी बनाई होती तो सभी बूढ़े तरुणाई के नृत्य करते होते! मौत को बिसरा कर जिंदगी से पुनः समझौता करने वाला वह दिन आदमी के चंद्रमा पर पैर रखने के दिन की तरह गौरवशाली दिन होता!

पोते और उसके बीच का अंतराल यही उम्र ही तो है!

उनतालीस साल तक स्वस्थानी का व्रत रख कर चालीसवें साल में गोवर्धन की पत्नी मर गई। वह माघ महीने की हड्डियाँ गला देने वाली ठंड की परवाह न कर वह हर रोज सुबह स्नान करती थी।

गोवर्धन बाँस्तोला न चाहते हुए अपने अतीत को सामने खड़ा पाता है।

मौत गोवर्धन की पत्नी राममाया के ही मुँह से पहले बोली थी। छप्पन साल की राममाया ने अपने खसम गोवर्धन को स्वस्थानी व्रत रखने की सलाह दी थी।

"तुम्हारे जाने से पहले ही अपनी माँग के ही साथ मेरी अर्थी उठ जाए– बस मेरी यही चाहना है। इस सिंदूर को पोंछकर, मंगलसूत्र निकालकर और काँच की चूड़ियाँ फोड़कर कैसे जिंदा रह सकूँगी? मेरी यही इच्छा है, तुम्हारे सामने मेरे प्राण-पखेरू उड़ें।"

राममाया ने अत्यंत सहजता के साथ मृत्यु का उच्चारण किया था। यह स्वाभाविक ही है कि तेरह साल से तिरसठ साल तक गोवर्धन को मृतात्मा में देखने की त्रासदी से बचाने के लिए जिंदगी से पलायन करना अर्थात् मरने की चाहना रखना नितान्त स्वाभाविक बात है। पचास सालों की गृहस्थी में दुनिया के अनगिनत सुख-दु:ख, शान्ति-अशान्ति और प्रेम-घृणा से सामना करना पड़ता है।

गोवर्धन अगले दिन भी काफी देर तक मनमाया के चबूतरे पर बिताता है। वर-पीपल के पीले पत्ते गिरे होते हैं, रात की हवा से। पिछली सर्दियों में न जाने किस घसियारे चोर ने जिस जगह से आधी टहनी काटी थी, उस जगह से आज तक पानी रिसता रहता है। बूढ़ा दरख्त है, नयी कोंपले कहाँ से फूटेंगी!

परले गाँव का होगा, ससुराल से अपनी नव-विवाहिता को लेकर लौटा मूँछों की पतली रेखा वाला युवक और कच्ची कली दुल्हन। गोवर्धन को पता चल जाता है कि उसे वहाँ बैठे देखकर वह युवक खुश नहीं था।

युवती ने सिंदूर कुछ ज्यादा ही लगा रखा था। ठीक ही है – गोवर्धन ने सोचा, 'सद्यःयौवना दुल्हन को ऐसा हृष्टपुष्ट दूल्हा मिलना किस्मत की ही तो बात है!'

युवक कुछ ज्यादा उतावले मिजाज का लगता है, नहीं तो गोवर्धन के वहाँ होते हुए भी इतने सट कर बैठने की जरूरत ही क्या थी! मनमाया तो केवल अंधेरे में प्यार करने को मानती थी। वह जैसे प्रेम में पूरी तरह डूब जाती थी। उसके प्रेम में भाषा अनुपस्थित थी– शब्द नहीं थे, केवल एक मूक प्रस्तुति। गोवर्धन भी इसी तरह अपनी दुल्हन लेकर आया था। गोकर्क से कुछ दूर पड़ने वाले नेजी नामक गाँव चबूतरे से अलग दिखता है। उस जमाने के कोमल पौधे आज पेड़ बन चुके हैं। रामभांग पुल के ऊपर की पहाड़ी पर बड़ा पहाड़ धसका था। अदरक की खेती से ग्रामवासियों की कमरें सीधी हो गईं थीं और फूस के छप्परों पर जीसीआई शीट लग गई थी।

... मनमाया अपनी अम्मा की गोद में सिर छुपा कर लगातार रो रही होती है – "मैं खसम के घर नहीं जाऊँगी अम्मा!"

मनमाया के लिए अम्मा के दुलार को गोवर्धन के प्यार में परिणत करने की एक अपरिहार्यता, एक अनिवार्यता थी। वक्त ने राममाया को गोवर्धन की ही परछाईं बना दिया। वह घबरा जाती जब गोवर्धन को मामूली बुखार चढ़ जाता। वह न जाने क्या-क्या, जाना-पहचाना हो न हो, पथ्य बनाकर खाने को देती।

गोवर्धन सिर उठाकर देखता है – 'विक्रम सम्वत्... मनमाया लिम्बूनी...' चबूतरे पर कम से कम मनमाया जिंदा है। मनमाया केवल उसी के सीने से चिपकी हुई...

इस साल के श्राद्ध में तो बेटे पिरथीलाल ने मुंडन नहीं किया। श्राद्ध भी अब एक समय-तालिका में पड़ने वाली तिथि ही रह गई है, एक बाध्यता!

पोता बीरू स्कूल से आ पहुँचता है।

"आज सर ने मेरे कान खींचे।" पोते की शिकायत।

आज के बच्चे गुरु की छड़ी और आगे की किताब के बीच कुछ और ही पढ़ते हैं। खेतों में पके आड़ू पढ़ते हैं। खेत में पकी हरी मक्की पढ़ते हैं। ज्ञान-विज्ञान में आसमान की तरह विस्तृत हो चुके ये सभी बच्चे जिंदगी के सभी सुख बचपन में ही पढ़ लेते हैं।

मेरे आगे-आगे चल रहा चंचल और उतावला बीरू रास्ते के किनारे गिर पड़ता है। नुकीले पत्थर से उसके माथे पर बड़ी लेकिन हल्की खरोंच लगती है। गोवर्धन बूढ़ा भी गिरते-गिरते बचता है और जल्दी-जल्दी पोते को उठाता है। एक जंगली बूटी हथेलियों में मसल कर ज़ख्म पर लगा देता है। कुछ न पाकर अपने गमछे का कोना फाड़ कर ज़ख्म पर बाँध देता है। वह बहू को पोते के गिरने और चोट लगने का वृतान्त सुनाता है।

उस दिन बहू श्वसुर को चाय कुछ देर से देती है। बीरू के ज़ख्म पर डिटोल से भिगोई रुई की पट्टी बाँध देती है। दो कदम चलने पर भी आजकल गोवर्धन ज्यादा थक जाता है। खाट पर लेट कर वह पास के टेबल से मनुस्मृति उठाकर पढ़ने लगता है। चश्मे के एक शीशे की पावर दूसरे शीशे से नहीं मिलती।

गोवर्धन के कानों में शब्द टकराते हैं –

"...बच्चा ही तो है! बड़े-बुजुर्गों को तो बच्चों को ठीक से उँगली पकड़ कर स्कूल से घर लाना चाहिए न! मेरे बच्चे के माथे पर कितनी गहरी चोट लगी है आज!"

पिरथीलाल की जोरू एक पड़ोसिन से बतिया रही होती है।

'बच्चों को उचित मार्गदर्शन मिल सकता तो दुनिया दूसरी ही होती! मेरी टाँगें थर-थर काँपती हैं। मैं चल सकता हूँ लेकिन जा कहाँ रहा हूँ...?' गोवर्धन जवाब सोच सकता है, जवाब का प्रारूप गढ़ सकता है लेकिन जवाब दे नहीं सकता।

बेटे पिरथीलाल ने कुछ नहीं कहा। केवल इतना कहा– "यह बीरू भी तो उतावला है!"

एक क्षण के लिए माँ की बात आगे न बढ़े, बीरू चुप हो जाता है और सोने का अभिनय करता है, लेकिन वह कुछ देर के बाद खुद को रोक नहीं पाता है। वह दादू के बिस्तर पर आकर उछल-कूद करने लगता है। गिलास की बची-खुची चाय को भी गटक लेता है।

"बाबा, मैं तो खुद गिर पड़ा था न? आपने तो मुझे धकेला नहीं था, न?" बोलते-बोलते वह सो जाता है।

***

मनमाया अल्पभाषी थी फिर भी उसकी बोली में सच होता था। उसकी अपने सिंदूर और मंगलसूत्र के साथ संसार छोड़ने की मन्नत का तात्पर्य केवल उसका गोवर्धन के प्रेम का भय और त्रासदी का भय नहीं है। वह एक निर्दिष्टता और एक मुट्ठी पवित्र विश्वास पर आस्था रखती थी।

***

औरों की तरह नहीं मिली गोवर्धन को गंगा-मैया!

... दिन भर बीमार भैंसों से लेकर भूखे भिखारियों तक को, फूलों और अगरबत्तियों से लेकर थुलथुल सेठों के मृत शरीर की चर्बियाँ तक को यही गंगा माई अपने में आत्मसात कर लेती हैं। 'राम नाम सत्य है' से लेकर मुट्ठी में छुरी लिए आदमी के दिलों को छलनी करने वाले लोग भी यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलते हैं गंगा के घाटों पर!

धर्म-अधर्म, निष्ठा और उदंडता सभी को अपने सीने में विलय करने वाली गंगाजी के घाट पर पहुँच कर गोवर्धन एक अप्रत्याशित आनंद से सरावोर था।

***

स्वस्थानी व्रत लेती माघ की कड़कड़ाती ठंड में नहाने की आदत बना चुकी राममाया गंगा में प्रसन्नचित्त स्नान करती है। काशी की नेपाली धर्मशाला से मणिकर्णिका घाट और दशाश्वमेध घाट से पहुँचने के लिए राममाया और गोवर्धन को काफी मशक्कत करनी पड़ी।

काशी की गलियों में दो कदम चलने पर रास्ता रोके साँड़ और दो कदम चलने पर मुच्छड़ और तोंदीले पंडे दहशत में डाल देते हैं। सिर पर नेपाली टोपी और गले में गमछा लटकाए काशी जाना सचमुच काशी लगने के समान ही है। हिंदी और नेपाली बोली के बीच के वाक्-युद्ध में पंडों को परास्त करने में कभी पीछे नहीं हटता गोवर्धन। इस बार से सर्दियों में जयकाशी विश्वनाथ की जय-जयकार लगाते गोली मिठाई और सिंदूर से पैसे ठगने आने वाले पंडों को गोवर्धन ने गाँव में वास न देने की ठान ली है।

गंगा स्नान कर विश्वनाथ मंदिर में पूजा करने के बाद गोवर्धन ने मनमाया को नाव चढ़ने की चाह भी पूरी करनी चाही। एक नाविक से दलाली बोली में बड़ी मुश्किल से दाएँ हाथ की पाँचों अंगुलियाँ दिखाकर भाड़ा तय हुआ।

राममाया बहुत डर गई। गंगा की लहरों पर नाव डगमगाती तो वह खसम की बाँह पकड़ लेती- "अरे नाव पलट रही है! राम! राम! राम!"

***

... गोवर्धन की अचानक नींद टूट जाती है। मुर्गे ने पहली बाँग दी थी। उसे काली मिर्च डाली गरम चाय पीने की तलब होती है। मनमाया दीवार की तरफ सोयी होती तो सिर्फ 'मुझे चाय की तलब हो रही है' कहना पड़ता। वह तत्काल उठकर बत्ती जलाती और एक बार खसम के माथे को छूती। बुखार के आसार होने पर वह स्वादिष्ट चाय बनाकर लाती और उसके बाद कहती- 'आज जेठा को खेत में पानी लगाने के लिए जरूर कहियो। लाल मिर्च की पौध तैयार है, जल्दी ही रोप देनी होगी। तुम्हें कहती लेकिन तुम्हें तो बुखार है!'

उसके बाद वह रात भर सो नहीं पाती थी। गोवर्धन बेफिक्र सोया रहता।

***

... लेकिन इस बार उसे सचमुच का बुखार था। सपने को याद कर वह अंधेरे में देखता रहा। लेकिन दरवाजे के कोने में काली बिल्ली की चमकती आँखों के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

गोवर्धन बाँस्तोला की मृत्यु अप्रत्याशित नहीं थी। पूरे पंद्रह दिनों तक बुखार रहने के बाद गोवर्धन को जिंदा रहने से ज्यादा मौत की उम्मीद ज्यादा लगने लगी। कुल दो महीने बिस्तर पर बिताने के बाद नींद में ही

उसका चोला उठ गया। एक घटना घट गई गाँव में। गोवर्धन ने कभी किसी का अहित नहीं किया। वह सभी का चहेता था- छोटे-बड़े सभी उसकी इज्जत करते थे।

जैसे कि दूसरों के साथ होता है, काफी रोना-धोना, उसकी मौत पर भी काफी रोना-धोना हुआ, काफी लोगों ने उसकी तारीफ के कसीदे गढ़े।

ठीक पिरथीलाल की अम्मा के स्मृति चबूतरे पर अर्थी ले जाकर पिण्ड देने के लिए लाश को रख दिया गया।

गोवर्धन ने क्या देखा?

कालजयी चार शब्दः 'मनमाया लिम्बूनीः विक्रम सम्वत्।'

....

*(**लेखकीय परिचयः** भीम दाहाल भारतीय नेपाली कहानी के चर्चित हस्ताक्षर हैं, वर्ष 2006 में उपन्यास 'द्रोह' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। इस कहानी का हिंदी अनुवाद वरिष्ठ साहित्यकार एवं अनुवादक सुवास दीपक द्वारा किया गया है। भारतीय नेपाली साहित्य एवं हिंदी भाषा को समृद्ध करने में सुवास दीपक की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय है।)*

त्रिलोचन पोखरेल: भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सिक्किम की सीमांत कथा

मूल लेख: **बिनोद भट्टराई एवं राजेन उपाध्याय**
अनुवादक: **मणि मोहन**

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के लोकप्रिय इतिहास में बड़े पैमाने पर आख्यानों में व्यक्तियों को महिमामंडित किया गया है। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस और शहीद भगत सिंह जैसे महान स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में प्रत्येक भारतीय जानता है, परन्तु उत्तर पूर्व भारत के स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में जनमानस को बहुत कम जानकारी है। पूर्वोत्तर भारत में बहुत से लोगों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समय बीतने के साथ, हमारे स्वतंत्रता संग्राम के कई नायकों को उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के बावज़ूद अतीत में कहीं हाशिए पर समेट दिया गया और कहीं उनके संघर्षो को भुला दिया गया। ऐसे ही भूले-बिसरे अग्रदूतों में से एक, सिक्किम की माटी के पुत्र स्मृति शेष त्रिलोचन पोखरेल हैं, जिन्हें 'गांधी पोखरेल' के नाम से भी जाना जाता है।

भारत ने 1947 में ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्रता प्राप्त की, लेकिन इस संघर्ष में, इसने कई पुरुषों और महिलाओं को खो दिया, जिन्होंने अपने अदम्य साहस और देशभक्ति के साथ अत्याचारी औपनिवेशिक शासक से आजादी के लिए लड़ाई लड़ी। आज, इन पुरुषों और महिलाओं को स्वतंत्रता सेनानियों के रूप में संबोधित किया जाता है, जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। समय बीतने के साथ, हमारे स्वतंत्रता संग्राम के कई नायकों को हाशिए पर ला खड़ा किया और विदेशी प्रभुत्व से मुक्ति के लिए हमारे संघर्ष में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद उन्हें शायद ही जाना जाता है। वे अन्य समाज सुधारकों और उनके आदर्शों की तरह ही विस्मृत अध्याय बन कर रह गए। ऐसे ही भूले-बिसरे अग्रदूतों में से एक सिक्किम की धरती के सपूत हैं- त्रिलोचन पोखरेल।

स्मृति शेष पोखरेल का जन्म स्वर्गीय भद्रलाल पोखरेल और श्रीमती जानुका के यहाँ 19 वीं शताब्दी के अंतिम दशक में पूर्वी सिक्किम के पाक्योंग उपखंड में तारेथाङ बस्ती में हुआ था। अपनी युवावस्था के दौरान, वे महात्मा गांधी द्वारा शुरू किए गए आंदोलनों से बहुत प्रभावित थे, जो सत्य और अहिंसा के मूल सिद्धांतों पर आधारित था। जबकि हमें महात्मा गांधी के पहले के आंदोलनों, जैसे असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन में उनकी भागीदारी के बारे में अधिक जानकारी नहीं है, फिर भी हम भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में उनके समकालीनों के दावों के आधार पर उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर सकते हैं। उनके समय के लोगों ने हमें उनके गुजरात के साबरमती आश्रम और बिहार के सर्वोदय आश्रम में गांधीजी के साथ रहने के बारे में बताया। अपने प्रवास के दौरान, श्री पोखरेल ने अपना समय चरखा कताई और आश्रमों के लिए अपनी सेवाएं प्रदान करने और अनेक दैनिक मामलों में महात्मा की सहायता करने में बिताया। श्री पोखरेल को महात्मा गांधी के नेतृत्व वाले सरल जीवन की शिक्षाओं में अत्यधिक विश्वास था। यह माना

जाता है कि स्वर्गीय पोखरेल गांधीजी की शिक्षाओं और उनकी जीवन शैली से अत्यधिक प्रभावित थे। तारेथाङ गांव में उनके चिर परिचितों ने हमें बताया कि वह अपने पैतृक गांव में फकीर गांधी के समान कपड़े पहनकर आते थे।[1] अंबा ग्राम पंचायत इकाई के दधीराम धमाला ने बताया है कि पोखरेल अपने घर में ज्यादा देर तक नहीं रहता थे। उन्होंने त्रिलोचन पोखरेल से मुलाकात का दावा किया। एक कहानी में, उन्होंने सिक्किम के किसानों के बीच महात्मा गांधी की स्वदेशी की अवधारणा के प्रचार में अपनी भागीदारी के बारे में भी बताया है। धमाला ने हमें बांदे पोखरेल की गतिविधियों के बारे में बताया कि अपने ख़ाली समय में स्थानीय हाट-बाजार (जैसे रोंगली, रेनॉक, पाक्योंग, रंगपो आदि) जगहों पर वे जाया करते थे और सूती धागा बनाने के लिए अपने चरखे के साथ एक तरफ बैठ रहते थे।

गांधीजी के समान, वे भी सूती धोती और खड़ाऊ (लकड़ी की भारतीय चप्पल) की एक जोड़ी पहनते थे। इस तरह उन्होंने 'गांधी पोखरेल' उपनाम अर्जित किया। कहा जाता है कि वह गांव में बड़ों का 'वंदे मातरम' कहकर अभिवादन करते थे। इससे उनके गांव के कुछ लोग उन्हें 'बंदे पोखरेल' कहने लगे। वे वन्दे मातरम का संदेश देते और स्वदेशी आंदोलन की भावना पैदा करते थे यानी कि कताई और स्वदेशी कपड़े पहनना, खादी और ग्रामोद्योग आदि स्थापित करना ताकि गांवों का विकास हो और गरीबों के लिए आमदनी पैदा हो सके।

स्वर्गीय पोखरेल सिक्किम के प्रथम स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने ब्रिटिश आधिपत्य के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। दरअसल, सिक्किम अंग्रेजों का संरक्षित राज्य था। वर्ष 1861 में तुमलोंग की संधि पर हस्ताक्षर के साथ सिक्किम को प्रभावी रूप से ब्रिटिश भारत का वास्तविक संरक्षित राज्य बना दिया गया।[2] भारत की ब्रिटिश सरकार आमतौर पर भारतीय साम्राज्य के उत्तरी किनारे पर स्थित बफर राज्यों को प्राथमिकता देती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद के दशकों में तिब्बत के मार्ग को खोलने के प्रयासों के इर्द-गिर्द केंद्रित परिस्थितियों के एक अनूठे संयोजन ने अंततः अंग्रेजों को सिक्किम पर एक औपचारिक संरक्षक स्थापित करने के लिए प्रेरित किया, जिसे बाद में चीन ने 1890 की एंग्लो-चीनी संधि में मान्यता दी। इसका सिक्किम की संप्रभुता पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश भारत ने सिक्किम की रक्षा और क्षेत्रीय अखंडता की जिम्मेदारी संभाली, और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सिक्किम के भीतर कहीं भी ब्रिटिश भारतीय सशस्त्र बलों को तैनात करने सहित भारत की सुरक्षा के लिए इस तरह के उपाय करने का अधिकार दिया गया था। एक अन्य प्रावधान यह निर्धारित करता है कि सिक्किम के बाहरी मामलों का संचालन और विनियमन पूरी तरह से ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा किया जाएगा, और सिक्किम का किसी भी विदेशी शक्ति के साथ कोई व्यवहार नहीं होगा। विदेश यात्रा करने वाले सिक्किमी नागरिकों को भारतीय संरक्षित व्यक्तियों का दर्जा प्राप्त होगा और वे समान सुरक्षा और सुविधाओं के हकदार होंगे और भारतीय नागरिकों के समान कठोर विदेशी मुद्रा प्रतिबंधों के अधीन होंगे।[3] सन् 1888 में जेसी व्हाइट से सिक्किम में राजनीतिक अधिकारियों की नियुक्ति के बाद, अंग्रेजों ने सिक्किम में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाला और त्रिलोचन पोखरेल को मुख्यधारा के भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया ।

स्वर्गीय पोखरेल के योगदान को मान्यता देते हुए सिक्किम सरकार ने 16 मई, 2018 को चिंतन भवन में 43 वें राज्य दिवस समारोह के दौरान स्वर्गीय पोखरेल के योगदान को दृष्टिगत रखते हुए उन्हें एल. डी. काजी पुरस्कार प्रदान किया। इस पुरस्कार में दिवंगत पोखरेल की पोती को एक प्रशस्ति पत्र और एक लाख रुपये का चेक दिया गया। एल.डी. काजी सिक्किम के पहले मुख्यमंत्री हैं, जिन्हें सिक्किम में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए जाना जाता है।

2021 में, हिमालय पर्वतारोहण संस्थान (HMI), दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल ने 21 से 30 अप्रैल तक सिक्किम हिमालय की चार चोटियों पर क्लाइंब-ए-थॉन अभियान का आयोजन किया। अभियान के हिस्से के रूप में, जो भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों को समर्पित है, टीम ने समुद्र तल से 16,500 फीट की ऊंचाई पर माउंट रेनॉक में 7,500 वर्ग फुट और 75 किलोग्राम वजन का राष्ट्रीय ध्वज फहराया। जिस स्थान पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया था उसका नाम सिक्किम के पहले स्वतंत्रता सेनानी त्रिलोचन पोखरेल के नाम पर रखा गया है, जिसे गांधी पोखरेल के नाम से याद किया जाता है। बड़े आकार के राष्ट्रीय ध्वज को फहराने के पीछे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और भारतीय हिमालय की विरासत और बड़े मकसद को बढ़ावा देना है। ध्वजारोहण बिंदु को भारतीय पर्वतारोहण समुदाय के बीच स्वर्गीय पोखरेल की स्मृति में 'त्रिलोचन पोखरेल पॉइंट' के रूप में जाना जाता है और छोटे पर्वतारोहण और ट्रेकिंग अभियान के लिए सिक्किम हिमालय में छोटी चोटियों को बढ़ावा देने का प्रयास किया जाता है। यह उपलब्धि एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स और इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में किसी पहाड़ पर फहराए गए सबसे बड़े भारतीय राष्ट्रीय ध्वज के रूप में दर्ज की गई।

भारतीय डाक विभाग एवं संचार मंत्रालय ने स्वर्गीय त्रिलोचन पोखरेल पर विशेष कवर जारी किया। "आज़ादी का अमृत महोत्सव" और राष्ट्रीय डाक सप्ताह, 2021 के राष्ट्रव्यापी उत्सव के एक भाग के रूप में, डाक विभाग, सिक्किम पोस्टल डिवीजन ने एक विशिष्ट कवर जारी किया जिसमें एक गुमनाम नायक और भूले हुए अग्रणी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी को दर्शाया गया है।

त्रिलोचन पोखरेल के महती योगदान को मान्यता देते हुए 30 जनवरी, 2019 को सिक्किम सरकार के सड़क और पुल विभाग ने पाक्योंग, तारेथांग और रोरेथांग रोड का नाम बदलकर 'बंदे पोखरेल मार्ग' करने की मंजूरी दी। इसी क्रम में पोखरेल की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए एक व्यू पॉइंट को वहाँ के ग्रामीण जन द्वारा अपने स्वतंत्रता सेनानी के नाम पर वन्दे व्यू पॉइंट का निर्माण किया गया।

18 फरवरी, 2021 को सिक्किम सरकार के कानून विभाग ने पाक्योंग जिले के तारीथांग तकचांग क्षेत्र में संग्रहालय के साथ-साथ पर्यटन विकास के लिए शोध के लिए काम करने के लिए वन्दे पोखरेल स्मारक एवं ग्रामीण पर्यटन विकास समिति को मान्यता प्रदान की। पोखरेल की उपलब्धियों और योगदान की मान्यता और स्वीकृति ने उन्हें सिक्किम का पहला स्वतंत्रता सेनानी बनाकर सिक्किम के इतिहास का गौरव बढ़ाया है।

स्वर्गीय पोखरेल को जानने वाले कुछ विद्वानों ने हमें बताया कि 1957 में पंडित जवाहरलाल नेहरू की सिक्किम यात्रा के दौरान वे अपने मूल स्थान पर आए थे और करिश्माई भारतीय प्रधानमंत्री के बारे में खूब बातें की थीं। शायद यह अपनी जन्मभूमि की उनकी अंतिम यात्रा थी और संभवत: वे अकेले सिक्किमी हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघर्ष में भाग लिया। उनके वंशजों के बारे में पूछताछ करने पर हमें बताया गया कि उनके परिवार के सभी सदस्य बहुत पहले असम चले गए थे। कपुरपाते गांव के तारा प्रसाद भट्टराई ने उल्लेख किया कि स्वर्गीय पोखरेल ने अपनी जमीन उनके पिता को बेच दी थी और अभी भी ताक्चाङ (कपुरपाते) गांव में जमीन का एक टुकड़ा है, जहां कभी वन्दे पोखरेल रहते थे। ताक्चाङ (कपुरपाते) गाँव के लोग इस भूमि को पोखरेल बारी (पोखरेल की भूमि) कहते हैं। अपनी बातचीत में श्री भट्टराई ने हमें पोखरेल जी की आखिरी तस्वीर और एक लिफाफा दिखाया, जो 47 साल पहले उनके परिवार के सदस्यों को मिला था। यह लिफाफा बिहार के पूर्णिया जिले से पोस्ट किया गया था, जिसमें सिक्किम के इस गांधीवादी की मृत्यु की पुष्टि थी जो इस प्रकार है: "27-1-69 को प्राकृतिक चिकित्सालय, रानीपात्रा, पोस्ट ऑफिस रानीपात्रा, जिला पूर्णिया, बिहार में प्रातः 9 बजे उनकी मृत्यु हुई।"

संदर्भ ग्रंथ सूची-

[1]Bhattarai, B. (2018). State Day and Remembering Gandhi Pokhrel of Sikkim. Sikkim Express. Retrieved from http://www.sikkimexpress.com/NewsDetails?ContentID=10349

[2]McKay, A. (2003). 19th century British Expansion on the Indo-Tibetan Frontier: A Forward Perspective. The Tibet Journal, 28(4), 61–76. Retrieved from http://www.jstor.org/stable/43302542

[3]Rose, L. E. (1969). India and Sikkim: Redefining the Relationship. Pacific Affairs, 42(1), 32–46. https://doi.org/10.2307/2754861

*(**लेखकीय परिचय:** यह लेख मूलतः अंग्रेजी भाषा में डॉ. बिनोद भट्टराई एवं डॉ. राजेन उपाध्याय द्वारा लिखा गया है। डॉ. बिनोद भट्टराई सिक्किम विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं एवं डॉ. राजेन उपाध्याय नर बहादुर भंडारी डिग्री कॉलेज, तादोंग के इतिहास विभाग में बतौर सहायक प्रोफेसर संबद्ध हैं। इस लेख का हिंदी अनुवाद चर्चित कवि एवं अनुवादक डॉ. मणि मोहन द्वारा किया गया है, जो कि वर्तमान में भोपाल, मध्यप्रदेश में रहते हैं।)*

ईसाई धर्म पूर्व मिजो के धार्मिक विचार

अनुवादक : डॉ जेनी मलसोमदोङकिमी

मूल लेख: जे वी ल्हुना

अधिकांश लेखकों ने मिजो धर्म को जीववाद के रूप में वर्णित किया। एम.सी कॉल ने अनुभव किया कि, अंग्रेजों द्वारा इनकी भूमि पर कब्जा करने से पहले, लुशाई पूरी तरह से जीववादी थे।[1] उनका मानना था कि जीवन कई बुरी आत्माओं के अधीन है, जिन्हें केवल बलिदानों से ही शांत किया जा सकता हैं। लुशाई लोगों का मानना था कि हर बड़े पेड़, पहाड़, बड़े पत्थर आदि में विभिन्न आत्माओं का निवास हैं, जो उनकी बीमारियों, मृत्यु, सूखे, तूफान, खराब फसल या दुर्घटना आदि जो उनके जीवन में घटित होती हैं उनके लिए जिम्मेदार हैं।[2] इस कारण, लुशाई पूर्वज अत्यंत भय में रहते थे, वे हमेशा बुरी आत्माओं को क्रोधित करने से डरते थे, जो उन्हें नुकसान पहुंचा सकती थी, परिणामस्वरूप, लुईस ने अपनी पुस्तक *'द लुशाई हिल्स'* में बताया कि लुशाई धार्मिक ऊर्जा इन बुरी आत्माओं को शांत करने पर केंद्रित हैं, जादूगर का जादू की मांग थी जो यह निर्धारित करते थे कि किस जानवर की बलि दी जानी चाहिए ताकि उस प्रतिभा को खुश किया जा सके जो गंदगी और बीमारी भेजती है।[3] वे उन दुष्ट आत्माओं के क्रोध को दूर करने के लिए जंगलों में और नदियों के पास कई बलि चढ़ाते थे। हालाँकि, यह समझना आवश्यक है कि मिजो इन बुरी आत्माओं या राक्षसों की पूजा /आराधना नहीं करते थे। वे केवल उन्हें प्रसन्न करना चाहते थे, क्योंकि उन्हें उनकी बीमारियों और कष्टों का कारण माना जाता था।[4]

पूर्व मिजो लोगों का भगवान के बारे में अस्पष्ट विचार था। वे एक सर्वोच्च ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते थे, जिसे वे *पथियन* कहते थे, जो सभी मानवता और अच्छाई का देवता था और मानते थे कि वह आकाश से परे निवास करते हैं जिन्हें *चुङ पथियन* (ऊपर वाले भगवान) के रूप में पहचाना जाता था। पूर्व मिजो लोगो का यह मानना था कि चुङ पथियन का उनके दैनिक जीवन में कुछ भूमिका है। मिजो लोगों के द्वारा दिये गए बलिदानों का कारण अन्य धर्मों की तरह भगवान के साथ शांति या मोक्ष प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाता था।[5] *खुआनु* (प्रकृति की माँ) शब्द का अर्थ या विशेष रूप से गीत और कविता में पथियन के पर्याय के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता था। पथियन को गाँव का संरक्षक माना जाता था। लुईस कथनानुसार बलिदान साल में केवल दो बार पवित्र-आत्मा समक्ष फसल से पूर्व और फसल के समय किया जाता था।[6] मिजो विचारानुसार मसीह का पुनरुत्थान बल के साथ अपील करता है, क्योंकि वह बुराई की सभी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने वाली अच्छी आत्मा के पुत्र के सत्य को बतलाता है।

अच्छी और बुरी आत्मा :-

इसके अलावा वे अन्य अलौकिक प्राणियों की उपस्थिति को भी मानते थे, जिन्हें वे विशिष्ट नामों से सम्मानित करते थे जैसे *वानचुङनुला* (स्वर्ग की युवती), खुआवाङ, लसी और रमहुआइ (राक्षस या बुरी आत्मा)। रमहुआई के विभिन्न रूप माने जाते थे जैसे *टाऊ, चॉम, खोशिङ,फ्हुङ, म्हुइथ्ला / लसी* को राक्षसों

या देवताओं के रूप में नहीं माना जाता था। लसी का संबंध केवल जंगली जानवरों से माना जाता था, जिनके ऊपर लसी का पूरा नियंत्रण होना माना जाता था।[7] कई शिकारियों को लसी ज़ोल के नाम से जाना जाता था। माना जाता है कि लसी जौल को लस्सी से एक संकेत मिलता है और परिणामस्वरूप वे सफल शिकारी बनते हैं। कहते हैं कि लसियां असंख्य संख्या में हैं और जंगलों में निवास करती हैं। मिजो लोगों का मानना है कि लसी बहुत ही सुंदर युवतियां है और यदि वे किसी शिकारी से आकर्षित होकर उनसे प्रेम करने लगती हैं तो उस शिकारी को शिकार की सफलता के लिए लसी आशीर्वाद देती हैं। लसियों को भगवान का प्रतिनिधि माना जाता था।

पुजारी और धार्मिक बलिदान :-

गाँव में *पुइथियाम* (गाँव के पुजारी) रहते थे, जो पारंपरिक समारोहों और अनुष्ठानों के लिए जिम्मेदार होते थे। प्रत्येक कुल का एक पुजारी होता था और उनके अनुष्ठानों का तरीका अलग-अलग होता था। मिजो समाज में पुइथियाम का महत्वपूर्ण स्थान था, जिनके बिना कोई भी धार्मिक समारोह या अनुष्ठान नहीं किया जा सकता था। पुइथियाम दो प्रकार के होते थे, जिनके कार्य एक दूसरे से भिन्न होते थे। साइआइथङा ने पाया कि *सदोत* पारंपरिक धार्मिक समारोह और लोगों के लिए भगवान से आशीर्वाद लेने के लिए जिम्मेदार हुआ करते थे, जबकि *बोलपु* उनकी बीमारियों को ठीक करने के लिए बुरी आत्माओं का अनुष्ठान किया करते थे।[8]

सदोत द्वारा किए गए धार्मिक अनुष्ठानों की एक श्रृंखला, *फनउ दोइ* सबसे महत्वपूर्ण समारोहों में से एक हुआ करते थे, जो अच्छी फसल सुनिश्चित करने और मच्छरों को रोकने के लिए गाँव के मुखिया के चावल के भंडार (*बुह्ज़ेम*) के बगल में काले मुर्गा को बलि देकर किया जाता था। मुख्यतः यह बलिदान जून महीने में किया जाता था। ज़मीन, फसल और घर के चारो ओर की समृद्धि के लिए *न्हुआइते* और *न्हुइआपुइ*बलि भी किए जाते थे। *सेदोइछुन* एक अन्य धार्मिक अनुष्ठान का हिस्सा हुआ करता था। इस धार्मिक अनुष्ठान के लिए एक मिथुन, दो सूअर और जंगली सूअर की बलि दी जाती थी। *सेखुआंग बलि* सेदोइछुन के साथ किया जाता था, जिसमें एक बैल गाय और एक सूअर सहित सूअर के बच्चे की बलि दी जाती थी। *मिथी रोपलम* समारोह मृतकों और उनके पूर्वजों के सम्मान में दावत और नृत्य सहित किया जाता था। माना जाता था कि जो व्यक्ति *मिथी रोपलम या सेखुआंग* अनुष्ठान पूर्ण करता है, वह दियारटियाल (एक धारीदार पगड़ी) पहन सकता था और उनके घर में खिड़कियां बनाई जा सकती थीं। इस अनुष्ठान को किए बिना आम आदमी न तो दियारटियाल पहन सकता है और न अपने घर में खिड़कियाँ बना सकता था।[9]

पूर्व मिजो लोगों द्वारा आयोजित भोज :-

खुआंगचोइ सभी अनुष्ठानों में अगला कदम हुआ करता था, पारंपरिक प्रथाओं के अनुसार, सेदोइछुन समारोह की पुनरावृत्ति के बाद किया जाता था। यह सबसे बड़ा और सबसे महत्वपूर्ण समारोह था। इस तरह के

समारोह को करने वाले व्यक्ति को *थंगछुआह्*[1] के नाम से जाना जाता था। इसे *'इन लमा थंगछुआह्'* कहा जाता था। विशिष्ट दावतों की श्रृंखला सहित खुआंगचोइ दावत समारोह पांच दिनों तक आयोजित की जाती थी।

एक अन्य प्रकार का *थङछुआह्* हुआ करता था जिसे *'रम लमा थंगछुआह्'* कहा जाता था। इस अनुष्ठान में व्यक्ति को कुछ निश्चित जंगली जानवरों जैसे *सवोम* (भालू), *सखीह्* (हिरण), *सेले* (जंगली गायल), *सजुक* (सांबर हिरण), *सङह्* (जंगली सूअर), *रुलङान* (एक जहरीला सांप) और *मु वांलाइ* (बाज़) का बलि करना होता था।[10] इस पूरी श्रृंखला को पूरा करने में लगभग पूरा जीवन लग जाता था, इस कारण बहुत से लोग इन अनुष्ठानों को पूर्ण करने में सफल नहीं हो पाते थे। फिर भी, थंगछुआह् सबसे प्रतिष्ठित लक्ष्य था, जिसे हर मिजो करने के लिए तरसता था और इस तरह जीवन भर इस अनुष्ठान को पूर्ण करने के प्रयास के लक्ष्य पर केंद्रित रहता था। जो लोग खुआङचोइ या थंगछुआह् अनुष्ठानों को पूर्ण करने में समर्थ होते, उन्हें गाँव में बहुत अधिक सम्मान दिया जाता था। उन्हें समाज के हर क्षेत्र में सामाजिक पहचान एवं सम्मान सहित, अगली दुनिया पियालराल (मृत्यु के पश्चात जीवन में) में एक परिपूर्ण और खुशहाल जीवन जीने का भी अधिकार प्राप्त होता था। इसलिए इन अनुष्ठानों को पूर्ण करने वाले व्यक्ति को एक विशेष पोशाक पहनने का हक प्राप्त होता था जिसे *थंगछुआह् पुआन*[2] के नाम से जाना जाता था। *थंगछुआह् पा* (पुरुष) को दावत में मुखिया के बगल में बैठने का अधिकार दिया जाता था और वह *डारटियाल* (दारीदार वस्त्र) का उपयोग कर सकता था साथ ही उसके घर में खिड़कियां और बाह्ज़ार+[3] बनाने की अनुमति प्राप्त होती थी। बिना थंगछुआह् के आम लोगों को यह अधिकार प्राप्त नहीं थे। अतः आश्चर्य की बात नहीं है कि मिजो लोग इस तरह के अनुष्ठानों में पूर्णता प्राप्त करने की कोशिश उनके सामाजिक और धार्मिक प्रतिष्ठा के लिए केन्द्रित रहते हैं।

ज़ाउदोह्, वह उच्चतम दावत है, जो एक मिजो तीन ख्वाङचोइ दावतों के बाद हासिल कर सकता था और केवल कुछ ही लोग हैं जिन्होंने इसे प्राप्त किया। इस अनुष्ठान के लिए कम से कम 14 गेल और 13 सूअरों की जरूरत होती थी।[12] इसके अलावा, लियांगखाइया के अनुसार, लगभग 1000 नगन (बर्तन) के जू (चावल बियर) की आवश्यकता होती थी। व्यक्ति जिसने ज़ाउदोह् को पूरा किया है, वह अपने घर के बाहर एक तरह ऊँची अटारी बना सकता था, जिसके चारो तरफ खिड़कियाँ हों। महिलाएं इस जगह का इस्तेमाल बुनाई के लिए कर सकती थीं और बच्चे इसे खेलने के लिए इस्तेमाल करते थे। केवल वही व्यक्ति जिसने *ज़ाउदोह्* प्राप्त किया है, वह ऐसी इमारत का निर्माण कर सकता था। व्यक्ति जिसने इन पूरी श्रृंखला को पूरा किया, *ज़ोहज़ोज़उ* कहलाए, जो वास्तव में बहुत दुर्लभ थे।

---

1 *थंगछुआह्*- यह उपाधि एक ऐसे व्यक्ति को दी जाती थी, जिसने सार्वजनिक भोज देकर अपनी पहचान बनाई हो। इस उपाधि प्राप्त करने को पियालराल (मृत्यु लोक) का पासपोर्ट माना जाता था।

2 थंगछुआह् पुआन: थंगछुआह् द्वारा अपने भेद को बनाने के लिए अलंकृत कपड़ा। थंगछुआह प्राप्त पत्नी को भी यह कपड़ा पहनने का अधिकार था। इस कपड़े में एक काले रंग की धारीदार डिजाइन होता है।

3 +बाह ज़ार- मिजो घर के पीछे एक बंद बरामदा जिसका फर्श ज़मीन से थोड़ा उठा हुआ होता है।

मृत्यु के बाद जीवन :-

मिजो की आत्मा के बारे में कुछ अलग मान्यताएँ थी। वे मृत्यु के बाद के जीवन में विश्वास करते थे। आम तौर पर उनकी स्वीकृत मान्यताओं में दुनिया के बाहर *मिथि खुआ* (मृत जनों का गांव) और *पियालराल* (स्वर्ग) की उपस्थिति थी। यह विश्वास सांस्कृतिक मानदंडों और मूल्यों को ढालने में सहायक था। उनमें मान्यता है कि पियालराल केवल थंगछुआह् के लिए था जब कि मिथि खुआ सामान्य जनों की आत्माओं के लिए, जहां वे अपना काम और मेहनत करना जारी रखेंगे। जब एक व्यक्ति मर जाता है तो उसकी आत्मा रिहदिल झील के माध्यम से मिथि खुआ जाती है।[13] रिहदिल को पार करते हुए उनकी आत्मा एक पहाड़ी पर जाती है जिसे *शिङलङ त्लाङ* कहा जाता था, जहां से जीवित जनों की भूमि देखी जा सकती थी। यहाँ जाकर मुख्यतः सभी आत्मा दुखी भावनाओं से भर जाती थी, क्योंकि वे पीछे मुड़कर उस दुनिया को देख सकते थे, जहां वे अपने परिजनों को पीछे छोड़ आए थे। लेकिन पियालराल में उगने वाले एक विशेष फूल जिसे *होइलउपार* (पीछे न लौटने के फूल) कहा जाता है, को अपने बालों में लगाने से, वे अपनी सभी इच्छाओं और लालसाओं को भूल जाते हैं। इसके अलावा, पियालराल में *लुंगलउतुइ* नामक रहस्यमय झरना था। इस झरने का पानी पीकर वे अतीत को पूरी तरह से भूल जाते हैं और अपने भविष्य के लिए जल्दबाजी में आगे बढ़ने में सक्षम होते हैं। यह मान्यता थी कि अगर वह व्यक्ति जिसने कोई अनुष्ठान नहीं किया और अन्य युद्ध में अन्य पुरुष या जानवरों का वध नहीं किया है, तो पु पोला उसे बेदर्दी से गोली मारता है, जिसका कई वर्षों तक दर्दनाक प्रभाव पड़ा था। लेकिन थंगछुआह् प्रपट व्यक्ति को गोली मारने की हिम्मत *पु पोला* के पास बिल्कुल नहीं होती। *पु पोला* को *ल्ह्यजुइ* (जन्म के समय मृत्यु) में मारे शिशु को अपने धनुष से मरने की अनुमति नहीं थी। पु पोला को उस युवक को मरने की अनुमति नहीं थी, जिसने तीन कुंवारियों का आनंद लिया हो या सात अलग युवतियों का आनंद लिया हो जो भले ही कुंवारी न हों, लेकिन उसे उस युवक को मरने की अनुमति प्राप्त थी, जो किसी अन्य की पत्नी पर बुरी नज़र डालकर उसका आनंद लेता है।[14]

यहां पु पोला के घर से *मिथि खुआ* और *पियालराल* की राह में विभाजन होता है।[15] पियालराल में भोजन और पेय बिना श्रम के प्राप्त होने के कारण मिथि खुआ में यह मिजो जन के लिए सर्वोच्च आनंद प्राप्ति का लक्ष्य बनता है, नहीं तो मृत्यु पश्चात भी जीवन इस सांसारिक दुनिया से भी बदतर होगा।

बुरी आत्माओं के लिए बलिदान :-

पूर्व मिजो लोग बुरी आत्माओं के प्रभाव को बहुत मानते थे। इन बुरी आत्माओं या राक्षसों की संतुष्टि के लिए विभिन्न बलिदान किए जाते थे, इन बलिदानों में प्रमुख *खल* था। यह बलिदान उन बुरी आत्माओं को दिया जाता था, जिन्हें अस्वस्थता और दुर्भाग्य का कारण माना जाता था।[16] बलि के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले कुछ जानवरों के आधार पर विभिन्न प्रकार के *खल* थे – *आरखल* (मुर्गे/मुर्गी की बलि, *वोंकते खल* (सूअर की बलि), *केल खल* (बकरी/बकरे की बलि), *वानचुंग खल* (आकाश में उड़ते

पक्षियों की बलि), *खल चुआङ* और *लसी खल*। चललियाना के अनुसार इस तरह के बलिदान को करते समय, प्रस्तावक के परिवार के सदस्य तीन दिनों तक अजनबियों से बात नहीं कर सकते थे।

एक बीमार व्यक्ति के लिए गांव के बाहर किए जाने वाले एक अन्य बलिदान को *दाईबोल* कहा जाता था। इस प्रकार की बलि के लिए एक लाल मुर्गा और मुर्गी का इस्तेमाल किया जाता था। वेदी पर रखे और वहां छोड़े गए भागों को छोड़कर, बलि किए गए जानवर को अक्सर उसी स्थान पर पकाया जाता था और उनका सेवन याचक और उसके सहायक द्वारा किया जाता था। इसके अलावा, शिकार, हत्या और कृषि और विभिन्न बीमारियों से जुड़े विभिन्न बलिदान हुआ करते थे। पूर्व मिजो जन हमेशा अपने आस-पास बुरी आत्माओं की मौजूदगी के प्रति सचेत रहते थे। उनका मानना था कि अदृश्य आत्माओं द्वारा जीवित जनों की हर गति की करीब से निगरानी होती है। इस कारण, मिजो जन अक्सर सावधान रहते थे कि वे उन आत्माओं की नाराजगी न झेलें जो उन्हें नुकसान पहुंचा सकती हैं। इसलिए जंगल में भोजन करने से पहले, भोजन का एक छोटा सा हिस्सा आत्माओं के लिए अलग रखा जाता था जिसे 'खुआत्लइ' (आत्माओं की संतुष्टि) कहते हैं। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि पूर्व मिजो जन हमेशा बुरी आत्माओं के डर में रहते थे और वे उनको प्रसन्न करने में अधिक सतर्क थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. ए.जीएम सी कॉल, *लुशाई क्रिसलिस*, 1949, पृ-67
2. वि एल सियामा, *मिजो हिस्टोरी,* 1975 पृ -25
3. ग्रेस आर लेविस, द *लुशाई हिल्स, बपटिस्ट मिशनरी सोसाइटी, लंदन,* 1907 पृ-29
4. मेजर. ए. जीएम सी कॉल, ओप. सिटपृ-68, सहित इ एल मेनडस, द *डाइरी ऑफ अ जंगल मिशनरी* लिवरपूल, 1956, पृ. -37
5. रेवरन जे एम लोयड़, *ऑन एव्री हिल*, लीवरपूल, 1955, पृ -19
6. ग्रेस आर लेविस, ओप.सिट, पृ -29
7. लेफ्ट. कर्नल जे शेक्सपियर, द *लिशाई कुकी क्लेन्स*, पुनः प्रकाशित, 1975 पृ -68
8. रेवरन साइआइथङा, *मिजो साखुआ* (मिजो रिलीजियन), मरानाथा प्रिंटिंग प्रेस, आइज़ोल, पृ. 9-10
9. एन. ई पर्र, *अ मोनोग्राफ ऑन लुशाई कस्टम एंडसेरेमोनीस* (पुनः प्रकाशित 1976), ट्राइबल रिसर्च इंस्टीट्यूट पृ. 91

10. पादरी चललियान, पी पु नुन, 1982, पृ. 55

11. रेवरन लियाङखाइयह्, *मिजो साखुआह्* आरटिकल कोनट्रिब्यूटिड इन द बुकएनटाइलटे "मिजो ज़िया राङ" मिजो अकादमी ऑफ लेटर्स, 1975 पृ. 11

12. रिहदिल - मिजोरम के पूर्व में एक झील जिसे दिवंगत आत्मा द्वारा मिथि खुआ (मृतक लोगो के गाँव) के रास्ते में एक राह माना जाता है।

13. लेफ्ट. कर्नल जे शेक्सपियर, द लिशाई कुकी क्लेन्स, पुनः प्रकाशित 1975, पृ-62

14. रेवरन जे एम लोयड़ , ऑन एव्री हिल, लीवरपूल, 1955 पृ. 21

15. रेवरन साइआइथङा, मिजो साखुआ (मिजो रिलीजियन), मरानाथा प्रिंटिंग प्रेस, आइज़ोल, पृ. 33

*(**लेखकीय परिचय:** यह लेख मूलतः मिजो भाषा में जे वी ल्हुना द्वारा लिखा गया है। इस लेख का अनुवाद डॉ. जेनी मलसोमदोङकिमी ने किया है, जो कि वर्तमान में शिक्षा निदेशालय, मिजोरम में सहायक हिंदी शिक्षा अधिकारी पद पर कार्यरत हैं।)*

वन्य जीवन की मिजो रामकथा

डॉ. मुनीन्द्र मिश्र

रामायण पूरे भारतदेश की सांस्कृतिक पहचान है। यह भारतीय सामाजिक संरचना का एक सुंदर चित्र है, जो विगत कई शताब्दियों से भारतीय जनमानस को दिशा दिखाता रहा है। भारत के परिवारों की पहचान रामायण के चरित्रों से होती है, वहीं से आदर्श मिलता है और वहीं से अपकर्ष भी पहचान में आता है। सारे संबंध रामायण में सुसज्जित हैं हर परिवार की तमन्ना होती है कि पुत्र राम सा मिले, बहू सीता जैसी, भाई भरत और लक्ष्मण से, माता कौशल्या सी, गुरु वशिष्ठ सा मिले और मित्र राम सुग्रीव सा। साथ ही सभी चाहते हैं कि कोई दासी मंथरा सी न हो, सौतेली माता कैकेयी सी न हो, भाई विभीषण न हो। एक प्रकार से देखें तो रामायण भारतीय सामाजिक ताने बाने को स्वरूप देता है।

रामायण यद्यपि उत्तर प्रदेश में स्थित अयोध्या के राजवंश की कथा है, तथापि यह कथा उत्तर से दक्षिण तक पूरे देश को स्पर्श करती है। राम का वन गमन भारत को सांस्कृतिक रूप से एक करता है। यहाँ तक कि भारत से अलग पाताल तक के राजा को अपनी कथा में समाहित रखता है। रामायण इस प्रकार न केवल भारतीय भू भाग को प्रेरित करता रहा है, बल्कि भारत से बाहर कई अन्य देशों में रामायण की कथा गाई, सुनाई एवं मंचित की जाती रही है। विशेष रूप से पूर्वी एशिया के देशों में रामायण मार्गदर्शक के रूप में माना जाता रहा है। मलेशिया जहाँ की आबादी मुख्यतया मुस्लिम है, वहाँ 'हिकायत सेरी रामा' नाम से रामायण की कथा गाई जाती है। वैसे ही म्याँनमार में 'यामा जामदाव' के नाम से, कंबोडिया में 'रामकेर' के नाम से, इंडोनेशिया के जावा में 'काकाविन रामायना', लाओस में 'फ्रा लाक फ्रा लाम', किंगडम ऑफ ला ना में 'फोम्माचाक' नाम से, फिलीपीन्स में 'महारादिया लवाना' व 'दारान्गेन ऑफ मिन्डानाओ' के नाम से, थाईलैंड में 'रामाकीन' जापान में 'रामायेन्ना' या 'रामायेन्सो' इसके अतिरिक्त चीन, कोरिया में भी रामायण के अपने संस्करण हैं। कोरिया में तो रामायण से विशेष लगाव माना जाता है। प्राचीन काल में वहाँ के राजा का विवाह अयोध्या की राजकुमारी से हुआ था, इसलिए वे स्वयं को रामायण से बहुत अधिक जुड़ा हुआ पाते हैं।

रामायण के लगभग 1000 भाषाई संस्करण दुनिया भर में मिलते हैं। भारत में लगभग प्रत्येक भाषाओं में रामायण की कथा है। उत्तर भारत, दक्षिण एवं पश्चिम भारत की रामकथाओं से सभी परिचित हैं, परन्तु पूर्व और पूर्वोत्तर भारत पर कम नजर गई है। पूर्वी भारत शक्ति की उपासना के लिए पहचाना जाता रहा है, इसलिए यहाँ रामायण की कथा के उतने अधिक संस्करण नहीं मिलते जितने शेष भारत में। बंगाल में मुख्य रूप से कृत्तिवास रामायण है, असम में रामयाण को माधव कंदली, अनंत कांडाली और रघुनाथ महंत ने असमी भाषा में रचा है, इसके अतिरिक्त अन्य कई रामकथाएं हैं इसके अतिरिक्त मणिपुर में रामायण की कथा विभिन्न रूपों में है। त्रिपुरा के राजपरिवार द्वारा बहुत पहले रामायण की कथा विद्वानों द्वारा बांग्ला में तैयार की गई थी।

पूर्वोत्तर भारत की वैविध्यपूर्ण संस्कृति की पहचान यहाँ की जनजातियाँ हैं। यहाँ सैकड़ों जनजातियाँ पूरे क्षेत्र को रंगबिरंगी सांस्कृतिक पहचान देती हैं। ये जनजातियां मुख्य रूप से प्रकृति पूजक हैं। पिछले 200

वर्षों में इन जनजातियों का विविध रूप से शोषण हुआ, मुख्य रूप से इनकी मान्यताओं पर आघात पहुँचाया गया और भारत के विदेशी शासकों ने इनका धर्म परिवर्तन करवा करके इन स्वच्छन्द जनजातियों को इसाईयत के दायरे में समेटा है। यहाँ तक कि कई जनजातियों की अपनी पहचान तक समाप्त हो गई। नागा जनजातियाँ, खासी, गारो, मिजो, वांचो, तांग्सा, नोक्ते इत्यादि जनजातियों में पारंपरिक मान्यताओं को मानने वाले बहुत कम बचे हैं। शासकीय संरक्षण में मिशनरियों के निरंतर दबाव और लालच से बड़ी जनजातीय आबादी अपनी मूल पहचान समाप्त करने की ओर है।

मिजोरम भारत को पूर्वोत्तर कोने पर तीन ओर से म्याँमार और बांग्लादेश से जुड़ा एक छोटा सा परन्तु बहुत ही मनोरम पहाड़ी प्रदेश है। मिजो जनजातियों का निवास स्थल मिजोरम 21,087 वर्ग किमी में फैला है। मिजो जनजातियों को लुसाई जनजातियों के नाम से भी जाना जाता है। लुसाई पर्वत में यह प्रदेश फैला हुआ है। 1987 में यह पूर्ण राज्य बना। इस प्रदेश में वर्तमान में बहुसंख्यक जनसंख्या इसाई मतावलंबी है, इसके अतिरिक्त कुछ संख्या में बौद्ध धर्मावलंबी रहा करते हैं। पूर्व में यहां हिन्दू मान्यताओं को मानने वाले रियांग जनजाति के लोग रहा करते थे, परंतु बहुसंख्यकों द्वारा प्रताड़ित किये जाने के बाद ये मिजोरम छोड़कर त्रिपुरा में विस्थापित हो गये। यहाँ पर कुछ संख्या में यहूदी धर्म को मानने वाले भी हैं। यद्यपि इस प्रदेश में इसाईयत का जोर है, तथापि पारंपरिक मान्यताओं के प्रति भी लोगों में जागरुकता आ रही है जिसके अंतर्गत हनाम साखुआ का मत धीरे-धीरे लोकप्रिय हो रहा है, जो पारंपरिक जनजातीय मत मानते हैं।

मिजो जनजातियों में रामकथा का अपना महत्व है। यहां पर रामायण लिखित रूप में उपलब्ध नहीं रहा है बल्कि लोकगीतों एवं लोककथाओं में रामायण कथाएँ कही जाती रही हैं। मिजो रामायण का मुख्य स्रोत मिजो लुसाई हिल्स के 1897 के तात्कालीन अधीक्षक श्री जे. शेक्सपीयर की लिखित 'लेह वाइक थोन थू' विषयक मिजो लोककथा संग्रह है, जिसमें जनजातीय रामकथा के विभिन्न हिस्से समाहित हैं। इस प्रकाशन में 10 लोककथा समाहित हैं, जिसमें 'खेना एंड रामा ते उनाऊ' के नाम से रामकथा संकलित है। यह रामकथा स्थानीय संस्कृति को समाहित किये हुए है, इसके कारण इसमें मुख्य रामकथा से व्यतिरेक भी है। जनजातीय समाज जंगलों में निवास करता रहा है, उसका नगरीय सभ्यताओं का बहुत परिचय नहीं रहा है इसलिए उनकी रामकथा में वनीय तत्व अधिक हैं। मुख्य कथा खेना और राम- ते उनाऊ थू (लक्ष्मण और राम की कहानी) यहाँ राम एवं खेना (लक्ष्मण) को देवता के रूप में मानते हैं। विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक अवसरों में खेना और राम देवताओं का आह्वान किया जाता है। वहाँ मंत्रों में इस प्रकार इन्हें याद किया जाता है।

"जब केचुएँ ने पृथ्वी को संसार के निर्माण हेतु लिया
जब प्रकृति माता ने दुनिया तैयार की
तुम खेना और रामा द्वारा बनाये गये
सत्य के बारे में बताने के लिए
सत्य का गान करने के लिए।"

कृषि कार्य में इनकी पूजा का विशेष महत्व है। मिजो समाज में माना जाता है कि खेना और राम ने चावल का निर्माण किया, इसीलिए स्थानीय पुजारी बियाद्रू द्वारा धान की फसल लगाने से पहले खेना और रामा का आह्वान किया जाता है। बियाद्रू स्वच्छ चावल के दाने लेकर मंत्र बोलता है-

"आप धान के माता-पिता हो
आपकी जड़े विस्तृत भूमि में फैली हैं
.....x.....x.....x.....x.....
.....x.....x.....x.....x.....
जब प्रकृति माता ने दुनिया तैयार की
तुम खेना और रामा द्वारा बनाये गये
सत्य के बारे में बताने के लिए
सत्य का गान करने के लिए।"

मिजो रामायण बहुत छोटा है, जो मुख्य रामायण का सारांश सा है परंतु इस कथा के अपने अलग तत्व हैं। मिजो रामायण में राम और सीता के साथ खेना (लक्ष्मण), हावलामान (हनुमान), वानुमान (जांबवान), लुफिरॉबन (महिरावण), लुशरिहा (रावण) मुख्य पात्र हैं। कथा के आरंभ में राम व लक्ष्मण माँ के गर्भ में हैं वे वहाँ बात भी कर रहे हैं। बाहर आने पर राक्षसी तानू का भय है क्योंकि गर्भ से निकलते ही उन्हें खा लेगी। तानू से बचने के लिए उन्हें माँ के पैरों से बाहर आना पड़ता है। जिससे माँ का निधन हो जाता है। इस कारण उन्हें अकेले जीवन बिताना पड़ता है। युवा होने पर एक दिन उनकी जमीन में स्थित जल स्रोत से जल लेने एक देवता की पुत्री आती है। उसे हिरण समझकर राम तीर मार कर घायल कर देते हैं। इसके लिए उन्हें तीन साल का देवताओं द्वारा दंड दिया जाता है। इसी बीच रामा (राम) और खेना (लक्ष्मण) को पता चलता है कि दूर देश में सीता नाम की लड़की है, जो बहुत सुन्दर है। वह एक बॉक्स में मिली थी। सीता के विवाह के लिए उसके पिता ने शर्त रखी है कि जो उस बॉक्स को उठा लेगा, उससे सीता का विवाह होगा। कई लोग इसके लिए प्रयत्न करके असफल रहे। राम ने लोगों के निवेदन पर प्रयास किया और सहजता से बॉक्स उठा लिया और उनका सीता से विवाह हो गया। एक बार लसूरिहा (रावण) स्वर्ण-हिरण के रूप में राम और सीता के सामने आता है। सीता हिरण की सुन्दरता देखकर मोहित हो जाती हैं और वो राम से हिरण की खाल लाने को कहती हैं ताकि वो उसकी खाल की डिजाइन के कपड़े बुन सकें। हिरण का पीछा करते हुए राम वापस नहीं लौटते इसी तरह दो साल बीत जाते हैं तो सीता खेना (लक्ष्मण) को राम को ढूढ़ने भेजती हैं। लक्ष्मण राम को जंगल में अचेत पड़ा हुआ पाते हैं, उन्हें औषधि से ठीक करते हैं। इधर खेना के जाते ही लसूरिहा (रावण) सीता के पास भिखारी के रूप में आता है। सीता उसके पास आकर भिक्षा देने से मना कर देती हैं तो वह सुपाड़ी माँगता है। सुपाड़ी देते समय लसूरिहा जबरदस्ती आकर सीता का हरण कर लेता है और सीता को तुईहरियाम (समुद्र) पार ले जाकर रख देता है।

राम और लक्ष्मण सीता को घर में न पाकर ढूढ़ने निकलते हैं। राम और लक्ष्मण के हावलामान मित्र बन जाते हैं और उनकी सहायता करते हैं। हावलामान के साथी सीता की खोज में चारो ओर लग जाते हैं। एक दिन जब हावलामान सो रहे होते हैं तो लसुरिहा का पुजारी लुफिराबोन (अहिरावण) राम और लक्ष्मण का हरण वामनुमान (जांबवान) के रूप में आकर कर लेता है और उन्हें समुद्र के पार ले जाता है। वह राम और लक्ष्मण की बलि देना चाहता है तब हावलामान लुफिराबोन को मारकर तुईफूल (बलि) देने से पहले राम और

लक्ष्मण को छुड़ा लेते हैं। उसके बाद हावलामान पक्षी बनकर उड़ते हुए रावण के नगर में प्रवेश करते हैं, वहाँ जाकर वानर बनकर सीता से मिलते हैं और उन्हें राम की अँगूठी देते हैं। सीता प्रसन्न होकर उन्हें तीन संतरे देती हैं। दो राम व लक्ष्मण के लिए और एक हावलामान के लिए। हावलामान तीनों संतरे खा लेते हैं और सीता से कहते हैं भूख लगी है और संतरे दो। सीता संतरे का वृक्ष बता देती हैं, तब हावलामान संतरे खाने बाग में जाते हैं वहाँ उनकी बाग के पहरेदारों से लड़ाई होती है तो हावलामान के कहने पर पहरेदार उनकी पूंछ पर कपड़ा बांधकर तेल डालकर आग लगा देते हैं। जिसके बाद हावलामान लसूरिहा के नगर में आग लगा देते हैं।

इधर राम एवं खेना (लक्ष्मण) हावलामान की सेना के साथ एक बहुत बड़े सर्प की सहायता से समुद्र पार करते हैं। इनके निवेदन पर सर्प समुद्र में लेटकर पुल के रूप में काम आता है और पूरी सेना समुद्र पार कर जाती है। लसुरिहा को उसका बंधु युद्ध से बचने की सलाह देता है और सीता को वापस करने को कहता है पर लसुरिहा नहीं मानता उसका बंधु विरोध वश राम के पास चला जाता है। वह राम और खेना को लसुरिहा के अस्त्र-शस्त्रों एवं तकनीकी के बारे में की गोपनीय बाते बताता है युद्ध में राम घायल हो जाते हैं, तब हावलामान को रावण के औषधि के बाग से औषधि लेने भेजा जाता है जहाँ वह औषधि नहीं पहचान पाते और पूरा बाग ले आते हैं जिससे राम का जीवन बचता है। युद्ध में राम लसूरिहा(रावण) को मार डालते हैं। वापस घर आने पर राम सीता से रावण की मूर्ति बनाने को कहते हैं। सीता राम के जोर देने पर रावण की मूर्ति बनाती हैं जिससे राम समझते हैं कि सीता के मन में रावण है और वे सीता को घने जंगल में छोड़ देते हैं जहाँ सीता दो जुड़वा बच्चों को जन्म देती हैं बाद में राम की सीता के दोनो बच्चों से संघर्ष होता है तब बच्चों को पता चलता है कि वे राम के ही पुत्र हैं और सबका मिलन हो जाता है।

मिजो रामकथा में अपनी अलग कथावस्तु है। जो वाल्मीकी रामायण का सारांश ग्रहण करती है, परंतु उसमें वन्य तत्व अधिक विद्यमान हैं। जब यह कथा मिजो समाज में आई होगी तब निश्चित रूप से मिजो लोगों का नगरीय सभ्यता से परिचय न रहा होगा अत: अयोध्या का वर्णन उनके लिए तर्कसंगत न लगता होगा। इसलिए कथा में नगर का वर्णन नहीं राम एवं लक्ष्मण की बातें हैं पर न रानियों की बातें न भरत शत्रुघ्न की बातें। कथा में मुख्यतया दो भाई राम और लक्ष्मण ही हैं। सीता के धनुर्यज्ञ की बात वन में दूसरे रूप में पहुँची और पूर्व की कई कथाएं सीता को बक्से से मिला बताती हैं। सीता का वरण यहाँ भी शर्त जीतने पर होता है। मिजो कथा में मृग है परंतु मारीच नहीं। इस कथा में सुग्रीव और हनुमान एक को ही बताया गया है। रामायण के कुछ प्रसंग इसमें जुड़े हुए हैं यथा अहिरावण की कथा, लंका दहन, सीता को अंगूठी देना और संजीवनी लाना इत्यादि।

यद्यपि जनजातीय स्वरूप पाकर कथा में विस्तृत बदलाव है, तथापि यह स्पष्ट है कि राम, सीता और लक्ष्मण भारत के प्रत्येक कोने में पूज्य हैं। राम भारतीय संस्कृति के अमिट अंग हैं। इनके स्वरूप अलग हैं, कहीं दैवीय रूप है तो कहीं नायक के रूप में पर विद्यमान प्रत्येक क्षेत्र में हैं। रामकथा पूर्वोत्तर में कई जनजातियों में गाई जाती है। चूँकि पूर्वोत्तर का साहित्य मौखिक है। इस कारण हर पीढ़ी अपने अनुसार कथा में कुछ जोड़ती घटाती है और कथा में अंतर बढ़ता जाता है। मिजोरम में रामकथा का अपना विशिष्ट महत्व है।

माना जाता है कि मिजो रामकथा का मूल बौद्ध धर्म की कथाओं से है तथा यह पूर्वी एशिया का संस्करण है जो वाचिक परंपरा में मिजो समूह तक पहुँचा है। मिजो रामकथा में हालवामान (हनुमान) की कथा और सीता त्याग की कथा दक्षिण पूर्व एशिया की रामायण से प्राप्त लगती है न कि भारतीय रामायण से। खामती, खासी, गारो जयंतिया, कार्बी, तिवा, मेच, इत्यादि जनजातियों के रामकथा के अपने अपने संस्करण हैं, इन सभी में पर्याप्त अंतर है परन्तु राम सर्वत्र हैं।

पूर्वोत्तर को जानने के लिए पूर्वोत्तर की संस्कृति को जानना होगा। आज भी भारत अपने देश के इस हिस्से के प्रति अनजान है। अभी तक वह इस क्षेत्र को अपनेपन से स्वीकार नहीं कर पाते, जिसका परिणाम होता है अलगाववाद। दूसरी शक्तियाँ अपना प्रभाव बढ़ाती हैं। यही केन्द्रीय भारत का अनमनापन पूर्वोत्तर में हिन्दू संस्कृति को निरंतर क्षीण कर रहा है। हिन्दुत्व के मानने वाले निरंतर कम हो रहे हैं, जो मानते भी हैं उन्हें हिन्दुत्व से अलग बताने का षडयंत्र लगातार चल रहा है। इस षडयंत्र का परिणाम पूरे पूर्वोत्तर में हिन्दुओं और स्थानीय जनजातीय मान्यताओं को मानने वालों की संख्या में कमी हो रही है। इसाई और इस्लाम बढ़ रहा है। भारत सरकार जनजातीय समाज को भारतीय संस्कारों से जोड़ने का विरोध करती रही है, परंतु लगातार हो रहे इसाई धर्म परिवर्तन के प्रयासों को रोकने का कुछ भी प्रयास नहीं किया है। हिन्दू संस्कृति से जुड़ाव विद्वानों को जनजातीय समाज पर हमला लगता है, परंतु इसाई धर्म में परिवर्तन में उनकी आँखे मुँद जाती हैं। जरूरत है कि हम जनजातीय समाज को देश की मुख्यधारा से जोड़ें। उनकी संस्कृति प्राचीन भारतीय समावेशी संस्कृति में संरक्षित रह सकती है, विदेशी हड़प संस्कृति में नहीं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. लालरुआंगा डा. एवं दत्ता बीरेन्द्रनाथ, रामा स्टोरी इन द मिजो ट्रेडीशन (अनपब्लिश्ड पेपर गुवाहाटी विश्वविद्यालय में 12 फरवरी 1988 में प्रस्तुत)
2. सांगकिमा, रामायना इन द नॉर्थ ईस्ट इंडिया-इम्पैक्ट ऑफ रामायना अपॉन मिजो, बी. आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन दिल्ली, 2002
3. सिंह जे.पी.: प्रेसिडेन्सियल एड्रेस, एनईआईएचए, आईजोल, 1998
4. सांगकिमा, सम सोर्सेस ऑफ अर्ली मिजोरम हिस्ट्री: ए क्रोनोलॉजिकल स्टडी, नॉर्थईस्ट इंडिया हिस्ट्री एसोसिएसन प्रोसीडिंग(एनईआईएचए) जोरहाट, 1993

*(**लेखकीय परिचय:** डॉ. मुनीन्द्र मिश्र त्रिपुरा विश्वविद्यालय में सहायक निदेशक (राजभाषा) पद पर कार्यरत हैं।)*

बेटी : ताश के पत्ते

मोर्जुम लोयी

पिछले एक साल से याज्ञा की माँ बिस्तर पर पड़ी हुई है। याज्ञा मुझसे उम्र में काफी बड़ी है, किंतु हम दोनों में एक चीज़ कॉमन है- वह और मैं अपने माता-पिता की अंतिम संताने हैं। हम संग-साथ खेले। याज्ञा का स्कूल में दाखिला देर से हुआ। माँ के बिस्तर पर पड़े रहने से याज्ञा के खेत का काम भी रुक गया। पिताजी को घर की परेशानियों से भागने के चक्कर में जुए की लत लग गई।

दिन भर उसकी माँ बिस्तर पर पड़े-पड़े कराहती रहती, खाँसती रहती। उन दिनों टी.बी. जानलेवा होने के साथ-साथ समाज में बहुत घृणित बीमारी मानी जाती थी। अब तो पीठ की चमड़ी भी छिल गई, जिस पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती। मेरी माँ मुझे मना करती कि मैं वहाँ न जाऊँ, पर याज्ञा के साथ दोस्ती मुझे अच्छी लगती। दोपहर का भोजन स्कूल से आकर हम सब बच्चे एक-साथ खाते। पर याज्ञा के पास दोपहर का भोजन नहीं होता।

"मेरा आधा खा लो।" मैं कहती।
"माँ भी भूखी है।" वो कहती।

फिर मैं घर से चावल चुराकर ले जाती और उसके घर बनाकर खाती। घर पर भाई होते थे। उनसे नज़र बचाकर याज्ञा फ्रॉक में चावल को बांधकर सूँअरबाड़े वाले हिस्से से नीचे उतरती और मैं आगे की सीढ़ी से। इस तरह मैं, याज्ञा और उनकी माँ भोजन करते। उनकी माँ बहुत कम खाती, या यों कहे कि खाती ही नहीं थी।

दो नदियों के बीच बसा हमारा गाँव बहुत सुंदर है। चारो ओर पहाड़ों से घिरा गाँव अपने मनोहारी दृश्य के कारण अद्भुत लगता। दिन के समय हम धान सुखाते। माँ कहती–"तेज़ धूप में अचानक बारिश होती है तो दिशा का ख़्याल रखना। ये बात हमेशा ध्यान देना कि उत्तर, पूरब या दक्षिण दिशा की बारिश गाँव तक नहीं पहुँचती है। पश्चिम दिशा में बारिश होती है तो हमें फटाफट धान को समेट लेना चाहिए, क्योंकि वह गाँव तक पहुँचती थी।"

गाँव के बुजुर्ग जानकार बहुत होते हैं। उनकी ख़ासियत है कि वह बड़ी सूक्ष्म और पत्ते की बात छोटे उदाहरण या बातचीत में कह जाते हैं। वे अनुभव के आधार पर कई बातें हमें सिखाते हैं, जिसका कभी-कभी कोई वैज्ञानिक कारण या तर्क मालूम नहीं देता है। आये दिन पहाड़ की पश्चिम दिशा से गाँव के बिलकुल पास हिरण की रोने की आवाज़ आती है तो उसे अशुभ माना जाता है। गाँव वाले कहते हैं कि 'गाँव में कोई मरने वाला है'। उस रोज़ याज्ञा की माँ ने भी कहा– "पश्चिम दिशा से आवाज़ आ रही है। इस बार मेरी बारी है।" और अगली सुबह उन्होंने हमेशा के लिए आंखे मूँद ली।

यूं शिकारी लोग बंदूक लेकर आवाज़ की दिशा का पीछा करते और हिरण का शिकार किया करते पर पश्चिम दिशा से रोने वाली हिरण की आवाज़ हिरण किसी की आत्मा होती है, इसलिए उसका शिकार नहीं किया जाता।

एक बार मैंने माँ से पूछा–"माँ, क्या सचमुच हिरण किसी की आत्मा होती है?"

"हाँ, ये सिर्फ मान्यता नहीं है, ऐसा वास्तव में होता है। आमतौर पर गाँव के सबसे बुजुर्ग, बीमार लोग ऐसे में मरा करते हैं, किंतु कभी–कभी कोई स्वस्थ या जवान लड़के-लड़कियां भी मर जाया करते हैं। हिरण उस दिशा में बेकार नहीं रोते, कोई न कोई अवश्य मरता है।"

मेरा बाल मन डर के कारण रोने को होता। मेरे रौंगटे खड़े हो जाते, आँखों में आँसू आ जाता। रात के समय ऐसी आवाज़ आने पर माँ से चिपक जाती। डर या भय माँ के स्पर्श और साथ पाकर कम हो जाता और मैं सुकून से सो जाती।

माँ की मौत के बाद याज्ञा की पढ़ाई छूट गई। याज्ञा की माँ की मौत के साथ उसके जीवन में कई पहाड़ टूट पड़े। बड़े भाई की शादी हो गई पर भाभी माँ का दर्जा न दे सकी। भाभी की याज्ञा से बनती नहीं थी। ममता की प्यासी याज्ञा ममता से वंचित रही। पिता ने ताश के खेल में सब कुछ हार गए और अंत में अपनी बेटी को भी...।

"क्या ताश के पत्ते ही मेरा मूल्य है, आबो ?" याज्ञा ने बस इतना पूछा।

पिता की नज़रे झुक गई पर वो फिर भी कहते हैं–"वह धनी परिवार है। तुम्हें खाने-पीने की कोई कमी नहीं होगी। इज्ज़त भी खूब मिलेगी।"

"…और मेरा पति? क्या वो मुझे अपनाएगा? मैं कम पढ़ी-लिखी, गाँव की लड़की। वो पढ़ा–लिखा, शहर का लड़का, क्या आपको फिर भी लगता है कि मेरा भविष्य सुरक्षित है?"

"तुम नौकर नहीं 'बहू' कहलाओगी। बड़ी बहू।"

"पिताजी, नाम 'बहू' का होगा पर काम नौकर का रहेगा, ये आप खूब समझते हैं। बिन पति के बहू।" अंतिम शब्द गले में गुम हो गए।

कैसी विडंबना है? एक बेटी अपने पिता से पति-पत्नी के संबंधों पर चर्चा कर रही है। वह अपने पिता की विवशता समझती है, लेकिन वास्तविकता से भी परिचित है। कहने को यह विवाह होगा, लेकिन वैवाहिक जिंदगी सपने ही रह जाएँगे। याज्ञा न चाहते हुए भी चुप्पी ओढ़ लेती है। बहुत कुछ उसके भीतर ही घुट जाता है।

याज्ञा एक दिन ससुराल आ गई। वो घर का सारा काम करती। सब उसे ' ञाम्तअ' (बड़ी बहू) कहकर बुलाते पर जिसके लिए बहू बुलाया जा रहा, वह उससे खींचा–खींचा रहता। वह घर देर से आता, सुबह जल्दी निकल जाता। एक अच्छी पत्नी बनने के प्रयास में याज्ञा उसका इंतज़ार करती। उसके आने तक खाना नहीं खाती।

याञा के पति ने एक दिन उसे जो कहा, यह सुनने के लिए शायद वह पहले से तैयार बैठी थी। उसने कहा कि–"देखो, तुम खुद खाकर सो जाया करो। मेरा इंतजार मत किया करो, मुझे अच्छा नहीं लगता। और बार–बार मेरी पत्नी बनने की कोशिश मत करो, मैं तुम्हारा पति नहीं हूँ।"

याञा का कलेजा जैसे फट पड़ने को हुआ, लेकिन गला रुंध गया। आवाज़ नहीं निकले। वह फफककर रोना चाहती थी, लेकिन जैसे वह निष्प्राण हो गई हो। याञा धीरे से अपने आँसू पोछकर फर्श पर चटाई बिछाकर सो गई।

ससुराल मेहमानों से भरा रहता। बड़े–बड़े बर्तनों में रोज़ खाना बनाती। दिन में कई बार बनाती। याञा के आने से उसकी सास को कुछ आराम हुआ। अब घर के नौकर याचाक और उसका पति को भी थोड़ा फुर्सत मिल जाते है। वरना क्या दिन, क्या रात, काम ही काम। रोज़ पोका (मदीरा), चाय, बर्तन। याञा अपने सास-ससुर का खास ख्याल रखती। उनका खाना, कपड़े धोना सब। एक बार रात के वक्त मेहमानों के साथ बैठकर अचानक आतो (ससुर) ने ऐलान कर दी–"कार्ली (बड़ा बेटा) अगर ञाम्तअ को नापसंद करता है तो मेरा छोटा बेटा है न, कार्गअ। ञाम्तअ को इससे एतराज़ नहीं होना चाहिए।"

बर्तन उठाते–उठाते याञा के हाथ रूक गए। आयो (सास) को देखा। आयो ने नज़रे अपने पति की ओर घूमा दी। तभी बगल वाले कमरे से कार्गअ चिल्लाया- "नाई चाइए।"

याञा सोच में पड़ गई। कार्ली याञा से उम्र में आठ साल बड़ा है, अब कार्गअ से याञा स्वयं दस साल बड़ी है। कार्गअ मुश्किल से ग्यारह साल का होगा। आदिवासी लड़कियां उम्र से पहले घर के काम-काज में निपुण हो जाती हैं, वे उम्र से पहले परिपक्व हो जाती है तो लड़कों में वह परिपक्वता कुछ देर से आती है। इस ओर किसी ने नहीं सोचा।

याञा की आँखों के आगे अंधकार छा गया। अब करे तो क्या करे? इस बालक का इंतज़ार करे? ये जो अभी से इनकार कर रहा है, क्या वह बड़ा होने पर मुझे स्वीकार करेगा? फिर उसे याद आया कि मैं तो ताश के पत्ते माफ़िक हूँ, जो जिस ओर चाहा फेंक सकता है। जब पिता ने ही दुबारा नहीं सोचा तो ये तो गैर है।

दूसरी रोज़ उसे पता चला कि आतो ने कार्ली को इस बंधन से आज़ाद क्यूँ किया। उस रोज़ एक क्लर्क की सरकारी नौकरी करने वाली खूबसूरत लड़की कार्ली को घर ले आया। कार्ली नाम से ही उसका पति था, ये जानते हुए भी याञा उस लड़की से जलने लगी। अब घर के कामों में उसका मन नहीं लगता। जितनी वह उन दोनों से बचने का प्रयास करती, उतनी वह लड़की उसके आस-पास मंडराती रहती। जाने क्या था उसकी आँखों में? प्रेम, दया या व्यंग्य? याञा समझ नहीं पाई। बस भागती रही।

एक बार वह उस घर से ही भाग आई। भाग आई उस घर में जहां से उसे बेचा गया। वह आ गई अपने भाई की चार बच्चों का आया बनकर। कुछ दिन बाद ससुराल वालों से बुलावा आया, वह नहीं गई। फिर एक दिन गाँव में 'कबा' (पंचायत) बुलाया गया, तय था ससुराल वालों की जीत। रात के ग्यारह बजे जब गाँव

वाले सो गए, उस नीरवता को भंग करती हुई उसकी सिसकियाँ मेरे घर के बाहर सुनाई दी। माँ ने टॉर्च पकड़ा और पाया कि याज्ञा सीढ़ी के पास बैठी रो रही है। माँ ने उसे अंदर बुलाया–"कुछ खा लो और सो जाओ।"

वह कुछ नहीं बोली और चुपचाप आज्ञा का पालन किया। सुबह-सवेरे माँ ने कहा –

"याज्ञा चली गई है , बेचारी।" पर याज्ञा अपने घर नहीं गई। वह गाँव से भाग गई। किसी को कुछ पता नहीं कि वो कहाँ गई है।

यहाँ उसके भाईयों ने पिता द्वारा लिए गए पैसों को सूद समेत लौटा दिए। अब याज्ञा आज़ाद है पर कहाँ? किसी ने खोजने का प्रयास ही नहीं किया।

तीन साल बाद एक बार एक गाँव वाले को असम में याज्ञा दिख गई। वह बाज़ार में सब्जी बेच रही थी। अपने परिचित को देखकर वह और उसका पति जबरन घर ले आए, चाय-नाश्ता कराया। दो कमरे का छोटा-सा घर। अपने ससुराल से किसी को पहली बार मिलकर याज्ञा का पति बहुत खुश हुआ। अपनी खुशी ज़ाहिर करते हुए कहा–"हम दोनों बहुत मेहनत करते हैं। छोटा-सा है, पर घर अपना है। आपकी बेटी ने बहुत दु:ख सहा है, अब इसे खुशी देना मेरी ज़िम्मेदारी है। आप लोग निश्चिंत रहिए।"

दोनों ने असमीया गमछा पहनाया, चाय, चीनी, बिस्कुट आदि कई चीजें दो-दो हिस्से में करके दिया ताकि एक खुद रख ले और दूसरा हिस्सा याज्ञा के घर वालों को दे दे। याज्ञा ने पति को देखा। उसका पति मुस्कुराया। याज्ञा ने विदाई के समय आलमारी खोलकर दस हजार रुपए निकालकर देते हुए कहा–"चाचा जी, पाँच आपके लिए, पाँच पिताजी के लिए।"

ये नोट ताश के पत्ते नहीं थे। यह किसी तरह की भरपाई भी नहीं थी। यह एक बेटी का अपने गाँव-समाज से प्रेम और बिछुड़न का उदाहरण था। यह याज्ञा का सही और सुरक्षित जगह होने का एक संदेशा भी था, जहाँ वह स्वतंत्र और आत्मीय जीवन जीने की कोशिश में जुटी हुई थी।

*(**लेखकीय परिचय:** मोर्जुम लोयी चर्चित कथाकार हैं। वर्तमान में बीनी याडा शासकीय महिला महाविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश में सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।)*

स्कूली शिक्षा व्यवस्था बनाम अरण्य रोदन

डॉ. वीना सुमन

हिंदी उपन्यास की परंपरा में यह उपन्यास इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उपन्यास जहाँ वैश्विक परिदृश्य को समेटता हैं वहीं अपना 'लोकेल' नहीं छोड़ता। कहने का अर्थ यह है कि भारतीय संरचना में जो घटित हो रहा है, वह एक वैश्विक सत्ता संरचना का हिस्सा है। यह बात इसलिए भी कही जा सकती है, क्योंकि हिंदी में 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा 90 के बाद आई, पर इस उपन्यास का प्रथम संस्करण 1985 में आया। आने वाले भविष्य में क्या होगा यह उपन्यास हमें इसका संकेत दे देता है। कहने का अर्थ यह है कि सब कुछ एक दूसरे से जुड़ा हुआ है इसलिए इसमें आपातकाल है तो युगांडा, चीन, वियतनाम भी हैं। समकालीन यथार्थ इतना गतिशील और बहुस्तरीय है कि उसको उसकी समूची गतिशीलता और बहुस्तरीयता में पकड़ पाना किसी भी लेखक के लिए बड़ी चुनौती है। बात जब उपन्यास की हो तो सबसे पहले जो ध्यान देने योग्य बात है वह यह है कि उपन्यास आकार से उपन्यास नहीं होता बल्कि उपन्यास बनता है महाकाव्यात्मक चेतना से यानी लेखक समय के यथार्थ को उसकी समूची गतिशीलता और बहुस्तरीयता में पकड़ पा रहा है या नहीं।

अब समय ब्लैक एंड ह्वाइट का नहीं है, बल्कि हमारे समय का यथार्थ बहुत ग्रे और धूसर है। लेखक जब अपने यथार्थ को उसकी धूसरता में पकड़ पाता है या चित्रित कर पाता है तो यह उसकी सफलता होती है। इसके लिए जरूरी है कि लेखक के पास परदे के पीछे के यथार्थ को देखने की दृष्टि होनी चाहिए। इसके साथ ही महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखक के पास वह भाषिक एवं संरचनात्मक कला होनी चाहिए कि वह परदे के पीछे के यथार्थ को इस तरह प्रस्तुत करे कि पाठक उसको अपने सामने घटित होता हुआ महसूस करे और इस तरह घटित होता हुआ महसूस करे कि यह यथार्थ उसके रोजमर्रा के जीवन का हिस्सा है। यही संप्रेषण है। इस लिहाज से अरण्य रोदन उपन्यास जो कि तकरीबन 35-40 साल पहले लिखा गया यह उपन्यास पूर्वोक्त सभी बातों को अपने में समेटे हुए है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समय न इतना गति आधारित समय था न इतना सूचना संजाल। फिर भी उस समय उपन्यासकार अपने समय के यथार्थ को इस तरह देख रहा था मानो आज का कोई लेखक देख रहा हो। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इसे पढ़ते हुए भालचंद नेमाणे के प्रसिद्ध उपन्यास 'कोशला' (1963) के शैली और कथ्य की याद लगातार आती है। अपनी व्यंग्यात्मकता, भाषा शैली और कहने के स्तर पर यह उपन्यास भारतीय उपन्यासों की उस परंपरा से जुड़ा हुआ है जो अपने आप में एकदम अलग और विद्रोही थी। यह उपन्यास भारतीय उपन्यासों के परिदृश्य से अलग है, यह उपन्यास भारतीय लोकेल (क्षेत्र) का अतिक्रमण कर अन्तर्राष्ट्रीय परिघटनाओं से पाठक को जोड़ता है। उपन्यास में चीन, वियतनाम, अमेरिका, युगांडा से लेकर भारत के आपातकाल और उसे सही साबित करने वाले बुद्धिजीवियों विनोवा भावे (अनुशासन पर्व) जैसी तमाम परिघटनाओं को अपने दायरे में लेता है और उनकी आलोचना प्रस्तुत करता है।

मजे की बात यह है कि जेनुइन प्रतिरोधी ताकतों के समर्थन में (अमेरिका वियतानामवार) वह वियतनाम के लड़ाकों की तारीफ करता है, इसके साथ ही साथ वैश्विक स्तर पर जहाँ भी तानाशाही या दमनात्मक हिंसक कार्यवाहियाँ हो रही हैं, उसका माखौल उड़ाता है। चाहे वह सीआईए हो, माओ हो या युगांडा के तानाशाह ईदी अमीन हो। लेखक की नज़र सिर्फ सेक्युलर राज्य के स्कूलों पर ही नहीं है वरन उसकी नज़र सिक्किम से होकर पूरे भारत एवं पूरे विश्व पर है। जहाँ कहीं भी कुछ गलत हो रहा है, इस उपन्यास में वह उस गलत के खिलाफ अपनी शैली में खड़ा है।

इस उपन्यास की एक कमजोरी भी है कि इसमें इतने मुद्दे उठाए गए हैं कि तमाम मुद्दे उठाने के बाद जो एक सेन्ट्रल स्टोरी बन सकती थी वह नहीं बन पाई है। उपन्यास में स्कूली सिस्टम में मुद्दे उठाए गए हैं उदाहरण के लिए मिस्टर सेठी जैसे पात्रों के माध्यम से हम देखते हैं कि उपन्यास में वह अपनी भूमिका को तय ही नहीं कर पाता है। क्योंकि वह उपन्यास में एक बेहतर मनुष्य के रूप में हमारे सामने उपस्थित नहीं होता बल्कि वह भी उसी सिस्टम के हिस्से के रूप में इस उपन्यास में हमारे सामने आता है, यह इसलिए भी कहा जा सकता है क्योंकि उपन्यास में वह बहुत बाद में अपना इस्तीफा देता है।

उपन्यास में कोई मजबूत पात्र उभरकर हमारे सामने नहीं आता है, ऐसा इसलिए भी हो सकता है क्योंकि कभी-कभी यह देखा जाता है कि किसी काल विशेष में समस्याओं का दौर इतना ज्यादा होता है कि लिखने के क्रम में बहुत सी चीजें छूट जाती हैं। उपन्यास की जो सबसे अच्छी बात है, वह है नेशन बिल्डिंग अर्थात राष्ट्र निर्माण जिसमें बार-बार संस्कृति के मजबूत होने पर जोर दिया गया है। विजयदेव नरायण साही ने कहा है कि ‘‘विचारधारा से आप पंथ का निर्माण करते हैं और मूल्यों से संस्कृति का।’’ उपन्यास में मैकाले का भी जिक्र आया है जिसमें अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अंग्रेजी संस्कृति किस तरह से हमारे रोजमर्रा के जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन गयी है। इस बात से भी हमें परिचित कराता है और उपन्यास में इसका परिचय हमें पात्रों के संवाद योजना से मिलता है कि किस तरह से अंग्रेजी शिक्षा पद्धति फल-फूल रही है।

अज्ञेय कहतें है कि भाषा में होना एक परंपरा में होना है, क्योंकि भाषा संस्कृति की संवाहक होती है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारत सरकार ने मातृभाषाओं में शिक्षा पर जोर दिया है। उपन्यास के केन्द्र में स्कूली सिस्टम है, वह सिस्टम जो राष्ट्र निर्माण करता है इसके साथ ही साथ स्कूली शिक्षा की नींव कितनी कमजोर है और कितनी मजबूत है इस पर भी बात की गई है। इस उपन्यास में स्कूली शिक्षा की नींव की कमजोरियों को दिखाने का प्रयास बखूबी किया गया है, क्योंकि संस्थाए समाज की मूलभूत इकाई होती हैं और सबसे मजबूत पक्ष यह कि इसमें स्कूली शिक्षा के माध्यम से प्राइमरी शिक्षा पर भी बात की गयी है। सेन्ट्रल पोलिटिकल डिस्कोर्स के साथ दुनिया और विश्व में जो चल रहा है, उस पर भी चर्चा की गई है।

एक सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि हम सभी जानते हैं कि सब कुछ पालिटिक्स है और स्कूली सिस्टम भी स्टेट संरचना से ही जुड़ा हुआ मामला है और इसको गाइड और डिजाइन करने वाले तत्व भी उसी पावर स्ट्रेक्चर में आते हैं। हम देखते हैं कि पावर स्ट्रेक्चर का मसला यह है कि वह सब कुछ अपने अनुकूल करना चाहता है, इसलिए हम कह सकते है कि जैसा बीज होगा, पेड़ भी वैसा ही होगा।

उपन्यास में हम देखते हैं कि प्रधानाचार्य के कुर्सी को पाने के क्रम में उपन्यास में आए पात्र किस तरह सत्ता के शिखर पर पहुँचते हैं और इसके लिए वो कितने उपक्रम करते हैं यह भी दिखाया गया है। इससे यह बात दृष्टिगत होती है कि हर एक्ट पावर में हिस्सेदारी चाहता है। पावर का मामला यह है कि राजनीति में मूल्य मायने नहीं रखता है, बल्कि सफलता मायने रखती है। यह गाँधी का मामला नहीं है, जहाँ वह कहते हैं कि ''राजनीति एक लंबी अवधि का धार्मिक कार्य है। अब तो देखा जाता है कि आप उस शिखर तक कैसे पहुँचे।'' राजनीति रिश्ते, नाते और रास्ते नहीं देखती, वहाँ साध्य और साधन का सवाल नहीं है। वहाँ मामला सिर्फ यह है कि सफलता क्या है।

यह बड़ी विडंबना है कि जिस देश में गाँधी ने आजादी की लड़ाई साध्य और साधन को केंद्र में रखकर लड़ी, उस देश की स्थिति क्या होती है कि सफलता ही सब कुछ हो जाता है। हम मैकाले द्वारा दिए गए उस पूरे सिस्टम को छोड़ नहीं पाते जो मैकाले ने दिया है इसलिए उपन्यास में कई ऐसे संवाद आए हैं जिसमें यह कहा गया है कि ''आई डू एग्री विद यू मी डोगरे, बट..... उपन्यास में अपने को अन्य लोगों से विशिष्ट बनाने के लिए किस तरह पात्र अंग्रेजी बोलते हैं और मैकाले की भाषा संस्कृति को आगे बढ़ाते हैं, यह भी दिखाया गया है।

शिक्षा व्यवस्था की खामियों को केंद्र में रखा गया है कि किस तरह से दूध वाले से लेकर रिक्शे वाले, सब्जी वाले तक इस पूरी व्यवस्था की चपेट में आते हैं। वो भले ही समझे या न समझे। शिक्षा व्यवस्था का मामला यह है कि वह अच्छे नागरिक बनाती है साथ ही वह विवके भी उत्पन्न करती है कि आप देश में चल रही किसी भी घटना पर निष्पक्ष भाव से अपनी बात रख सकें। लेकिन यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब मूल्य की जगह शिक्षा आँकड़ों और सफलता पर केंद्रित हो तो दिक्कत होगी ही जैसे साक्षरता हमारे यहाँ आँकड़ां पर निर्भर है। उपन्यास में तमाम प्रधानाध्यापक बदलते हैं और तमाम स्कूली शिक्षक बदलते हैं, लेकिन उसकी संरचना में रंच मात्र का भी परिवर्तन हमें नहीं दिखाई देता है।

स्कूली संरचना की शुरूआत का बाइडल रेंज भी यहीं से शुरू होता है, हम जेनुइन लेबल पर जैसे होंगे बच्चें भी वही सीखेंगे क्योंकि दोनों परस्पर रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं इसीलिए दोनों की बर्बादी पर दोनों का परस्पर हाथ हैं। उपन्यास में शिक्षा के मूल उद्देश्य को छोड़कर वह सभी कार्य हो रहा है जो व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जा सकता है, इसका परिणाम यह होता है कि कोई अपने को ज्योतिष बताने लगता है तो कोई अध्यापकीय जुगत में लगा रहता है। बार-बार उपन्यास में संस्कृति की बात की जाती है जिसके तहत स्कूलों में कई तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रम भी कराए जाते हैं। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि शब्दों से संस्कृति नहीं बनती, बल्कि उसके लिए डिवोशन चाहिए होता है जो कि उपन्यास में वह नहीं के बराबर दिखाई देता है। सवाल यह है कि हम कौन सी संस्कृति चाहते हैं और क्या बन रही है? हम उसको बनाने की योग्यता रखते भी हैं या नहीं? ऐसे कई मुद्दे हैं जो कि इस उपन्यास में उठाए गए हैं क्योंकि हम सभी जानते हैं कि कोरा संस्कृति से काम नहीं चलेगा और यदि ऐसा होता रहा तो एक दिन पूरा देश संस्कृति विहीन होगा

और उसके बाद जो संस्कृति जन्म लेगी वह ईदी अमीन और हिटलर, माओं की संस्कृति होगी जो सफलता के लिए कुछ भी करने को तैयार होगी।

यह उपन्यास स्कूली शिक्षा व्यवस्था के उस मिथक को तोड़ता है, जिसमें यह कहा जाता है कि स्कूल मंदिर है। इस उपन्यास में धूमिल के साहित्य जैसा एग्रेशन और सटायर भी हमें बखूबी दिखाई देता है। उपन्यास की एक खास बात यह भी है कि वैश्विक स्तर पर जो सत्ता संघर्ष है उसको भी उपन्यास में दिखाया गया है। क्योंकि उपन्यास में बार-बार वियतनाम और युगांडा का जिक्र आया है इसीलिए कई तरह के तानाशाहों का जिक्र भी उपन्यास में आता है, जिससे यह पता चलता है कि तानाशाही वाले जितने भी मामले रहे हैं चाहे वह टीचर हो या किसी और पद पर कार्यरत कोई व्यक्ति, स्ट्रेक्चर की तानाशाही दिखाई दे ही जाती है।

(लेखकीय परिचय: डॉ. वीना सुमन सुपरिचित कथा-समीक्षक हैं। वर्तमान में वाराणसी में अध्यापन कार्य से संलग्न हैं।)